मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहली आवृत्ति ३०००, सन् १९५६
पुनर्मुद्रण ७०००, सन् १९५८

मओी, १९५८

प्रस्तावना

'शिक्षामें विवेक' की तरह अिस पुस्तकमें भी अधिकतर मेरे पुराने लेखोंका ही संग्रह है। कॉलेजके दिनोंसे ही प्राथमिक शिक्षाके प्रश्नने मेरे हृदयमें स्थान बना लिया था। जब मैं अिंटर या जूनियर बी० अे० में था, तब अिस विषय पर मैंने अेक निबंध पढ़ा था; और अुसमें भी मुझे याद है कि मैंने औद्योगिक शिक्षा, हिन्दी, ग्रामजीवन-सुधार वगैराके बारेमें कुछ योजना पेश की थी। वह निबंध तो मेरी अुस समयकी बुद्धिके अनुसार ही लिखा गया होगा। परन्तु शिक्षाके क्षेत्रमें जीवनका अुपयोग करनेकी अभिलाषा अुस समयसे ही मनमें पोषित होती रही थी।

सत्याग्रहाश्रमकी राष्ट्रीय शालामें शरीक हुआ, तब अुस अभिलाषाको मूर्तरूप मिला। राष्ट्रीय शालासे गुजरात विद्यापीठमें काम करनेका अवसर आया, तब विद्यापीठकी पाठशालाओंके अुस समयके निरीक्षक श्री कालिदास वसनजी दवेने 'नवजीवन' की पूर्तिके रूपमें 'विद्यापीठ शिक्षा-अंक' के नामसे मासिक जारी किया। अुसमें मैं कभी-कभी अपने विचार पेश करने लगा। अुसके बाद अथवा साथ साथ 'नवजीवन' तथा दूसरे भी कुछ पत्रोंमें या प्रसंगों पर मैं अपने ये विचार प्रकट करता रहा। अुनमें से कुछका संग्रह 'तालीमकी बुनियादें'*में हुआ। वह संग्रह अेक विशेष दृष्टिसे किया गया था। अिसलिअे अुसमें मेरे सभी लेख नहीं लिये गये थे।

अिसके बाद कुछ वर्ष बीत गये। १९३० के बादके आन्दोलनके पश्चात् शिक्षाके क्षेत्रमें मेरा प्रत्यक्ष भाग लेना बंद हो गया। १९३४ में तो मैं वर्धा आ गया। वर्धाने मुझे गांधी-सेवा-संघके क्षेत्रमें धकेल दिया। परन्तु अिसी बीच गांधीजीकी 'बुनियादी शिक्षा' की विचारसरणी आरंभ हो गअी। अुसकी पहली परिषद्में मैं अुपस्थित तो नहीं रह सका, परन्तु जाकिरहुसेन कमेटीमें अपना नाम रखा हुआ मैंने देखा।

---

* नवजीवन कार्यालय द्वारा प्रकाशित। कीमत २–०–०; डाकखर्च १–०–०।

असि प्रकार मेरे लिअे फिर शिक्षाके विषयका विचार करनेके अवसर आये; और कभी-कभी लिखने या बोलनेके प्रसंग भी अुपस्थित हुअे। ये लेख अधिकतर 'हरिजनबन्धु', हिन्दी 'सर्वोदय' या गुजराती मासिक 'शिक्षण अने साहित्य' में और कभी-कभी दूसरे पत्रोंमें भी प्रकाशित होते थे। १९४२ के आन्दोलनसे पहले 'रचनात्मक कार्यक्रम' पर अिन दोनों मासिकोंमें मैंने अेक लेखमाला आरंभ की थी। अुसमें शिक्षाके विषय पर प्रकरण लिखे जा रहे थे कि अितनेमें आन्दोलन शुरू हो गया और जेल चला जाना पड़ा। जेलसे छूटनेके बाद लेखमाला जारी रखनेकी सूचनायें मिलीं, मेरी अिच्छा भी थी, परन्तु अुस विषयका ध्यान खंडित हो गया और परिस्थिति भी बदल गअी, अिसलिअे वह काम रह गया सो रह ही गया।

अिन सब लेखोंका संग्रह अव्यवस्थित रूपमें सुरक्षित पड़ा था। यह संभव नहीं था कि मैं स्वयं अुन सबको व्यवस्थित करके छांटूं और प्रकाशित करूं। अिसलिअे मैंने सारी सामग्री श्री रमणीकलालभाअी मोदीको सौंप दी। अुन्होंने परिश्रम अुठाकर अुस सबको व्यवस्थित किया। लेखोंको क्रमशः जमाया; अुनके भाग किये। जो अब बेकार हो गये मालूम हुअे, अुन्हें मुझे बताकर रद्द किया। सुधारने जैसे लगे अुन्हें मुझसे सुधरवा लिया; अधूरे लगे अुन्हें पूरा करवा लिया। और फिरसे व्यवस्थित रूपमें जमाकर सारे लेख मेरे देखनेके लिअे भेज दिये।

अैसा प्रतीत हुआ कि अुनके 'शिक्षामें विवेक' और 'शिक्षाका विकास' जैसे दो स्वतंत्र भाग हो सकते हैं। अिसलिअे तदनुसार व्यवस्था कर दी। अिस प्रकार श्री रमणीकलालभाअी मोदीके परिश्रमसे ही मेरे तमाम पुराने लेखोंका संशोधन और संपादन हो रहा है।

लेखोंकी जांच करते-करते ही मैंने देख लिया कि वर्धा-योजनाका बीज साबरमतीमें ही बोया जा चुका था। 'तालीमकी बुनियादें' पुस्तककी प्रस्तावनामें भी अिसका अुल्लेख तो है ही। परन्तु जैसा कि श्री नरहरिभाअी परीखने लिखा है, अुद्योग और 'साक्षरी' (पुस्तकीय) शिक्षाके बीच तथा शिक्षाके विषयों और प्रत्यक्ष जीवनके बीचके मेलका विचार पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था, अच्छी तरह सूझा भी नहीं था।

वह धीरे-धीरे किस तरह सूझता गया और विकसित होता गया, यह अनायास अिस पुस्तकमें दिये गये लेखोंको दुवारा पढ़ने पर मेरे ध्यानमें आया। अिसलिअे अिस संग्रहको 'शिक्षाका विकास' नाम दिया गया है।

शिक्षाके कार्य और विचारोंके आदान-प्रदानमें श्री नरहरिभाअी परीखका और मेरा साथ सबसे अधिक रहा है। वैसे तो काकासाहब और विनोबा भी अुतने ही पुराने साथी हैं। परन्तु कोचरब (अहमदाबाद) की राष्ट्रीय पाठशालामें शरीक हुआ, तबसे श्री नरहरिभाअीके और मेरे बीच अिस विषयमें जितनी चर्चाअें हुअीं अुतनी शायद औरोंके साथ नहीं हुअीं। साबरमती आश्रममें चोरोंके अुपद्रवके कारण आश्रमवासियोंको कअी बार जोड़ी बनाकर पहरा देना पड़ता था। अुसमें घंटे दो घंटेका समय हमारे हिस्सेमें आता था। भरसक हम दोनों अेक ही जोड़ीमें रहनेकी व्यवस्था करते थे। हमारा रातका चारों ओर फैली हुअी शान्तिका यह समय शिक्षा और अर्थशास्त्रके विविध सिद्धान्तों और समस्याओं आदिका सह-चिन्तन करनेमें जाता था। मेरी और अुनकी विचारसरणी क्वचित् ही भिन्न पड़ती होगी। सन् १९४७ में अेक दो मास मैं अुनके यहां साबरमतीमें रहा था। अुस समय अिस संग्रहके कुछ लेखोंकी फाअिल मैंने अुन्हें पढ़नेको दी थी। अुस समय वे गुजरात बेसिक अेज्युकेशन बोर्डके अध्यक्ष थे। अुसी समय हमारे ध्यानमें आया कि यह संग्रह प्रकाशित हो तो 'नअी तालीम' के शिक्षकोंके लिअे अुपयोगी होनेकी दृष्टिसे अुसमें पूर्तिरूप कुछ लिखनेकी जरूरत होगी। मुझसे यह काम हो नहीं सकता था। अतः मैंने अुस समय अुनसे अनुरोध किया कि यह काम अुन्हींको करना पड़ेगा और अुन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार किया था। बादमें वे अितने बीमार हो गये कि यह अिच्छा पूरी होनेकी आशा ही नहीं रही। परन्तु अीश्वरेच्छासे यह संग्रह छपनेमें विलंब हुआ। अिस बीच श्री नरहरिभाअीका स्वास्थ्य काम करने लायक सुधर गया और किया हुआ संकल्प पूरा हुआ।

अिस प्रकार अिस पुस्तकको श्री नरहरिभाअीकी पूर्ति प्राप्त हुअी। परन्तु अुसे पूर्तिके रूपमें देनेकी अपेक्षा भूमिकाके रूपमें देना अधिक अुपयुक्त होगा; वह पाठकोंको आगे आनेवाले लेखोंके लिअे तैयार करती है, अिसलिअे मैंने अुसे भूमिकाके रूपमें छापनेका निश्चय किया है।

अिस भूमिकाका पहला प्रकरण 'नअी तालीम' के मुद्दों, अुनकी कठिनािअयों और अुपायोंकी चर्चा करता है। अपने दूसरे प्रकरणके विषयमें थोड़ा स्पष्टीकरण अुन्होंने किया ही है। अुसमें दो वाक्य और जोड़ दूं। मैंने जाकिरहुसेन कमेटी द्वारा तैयार किये हुअे अितिहासके पाठ्यक्रमसे भिन्न प्रकारका अपनी दृष्टिका पाठ्यक्रम तैयार किया था। अुस पाठ्यक्रमकी कुछ नकलें करवा ली थीं। वह पाठ्यक्रम श्री नरहरिभाअीका देखा हुआ था और सम्भवतः गुजरात बेसिक अेज्युकेशन बोर्डका पाठ्यक्रम तैयार करनेमें अुसका अुपयोग भी किया गया था। वह पाठ्यक्रम कुछ जल्दीमें तैयार किया गया था और अधूरा भी रहा होगा। परन्तु मुख्य बात कालक्रमकी थी। मेरा मानना है कि भूगोलकी तरह अितिहासका ज्ञान भी समीपसे शुरू करके पीछेकी तरफ जाना चाहिये। छोटे बच्चोंको प्राचीन मनुष्योंकी बातें कहनेसे अुनके मनमें गलत चित्र ही अुत्पन्न होते हैं और वे बड़ी अुम्रमें भी वैसे ही बने रहते हैं। जैसे पण्डितोंकी नजरके सामने भी बचपनमें पढ़े या सुने हुअे गिरधर कवि* या शामल भट्टके* हनुमान और रावणके चित्र ही तैरते रहते हैं, वैसे बालकोंके मनमें प्राचीन मनुष्योंके बारेमें विकृत चित्र ही खड़े होते हैं। और, चाहे दस लाख वर्ष कहिये या दस हजार वर्ष कहिये, दोनोंके बीचके भेदकी या अुनकी प्राचीनताकी कोअी स्पष्ट कल्पना तो अुन्हें हो ही नहीं सकती। अिस प्रकार यह व्यवस्थित ढंगसे गलत अितिहास सिखानेकी पद्धति बन जाती है। अिसलिअे अपने आसपासके और निकट समयके अितिहाससे शुरू करके धीरे-धीरे दूरके देश और दूरके समयकी तरफ जाना चाहिये। दुर्भाग्यसे मैं अपनी यह दृष्टि जाकिरहुसेन कमेटीके अधिकांश लोगोंको समझा नहीं सका। केवल विनोबाने मेरी यह दृष्टि मान्य की, परन्तु वे अुसकी आखिरी बैठकमें अुपस्थित नहीं थे और दूसरे सदस्योंने या तो अुसे स्वीकार नहीं किया या अुसका आग्रह नहीं रखा।

अिस पाठ्यक्रमकी नकलें व्यक्तिगत रूपमें किसी किसीने मुझसे मंगवाअी थीं। और मेरा ख़याल था कि अुसकी अेकाध नकल मेरे पास जरूर

---

* गुजराती भाषाके प्राचीन कवि, जिन्होंने रामायणको गुजरातीमें पद्यबद्ध किया है।

होगी। परन्तु मेरे संग्रहमें वह नहीं मिली। अिसलिअे मैंने श्री नरहरिभाअीको अिस विषयमें स्वतंत्र चर्चा करनेका सुझाव दिया। पाठक देखेंगे कि वह चर्चा अुन्होंने सांगोपांग रूपमें भूमिकाके दूसरे प्रकरणमें की है। अुसमें विनोबाके विचार भी गूंथ लिये गये हैं। अनायास अुसमें अितिहास-सम्बन्धी मेरे तीनों मंतव्योंकी चर्चा भी आ जाती है। अेक, जैसा अूपर कहा गया है, अितिहासकी शिक्षाका देश और कालकी दृष्टिसे आरंभस्थान; दूसरा, अितिहासके ज्ञानकी अुपयोगिताके बारेमें 'जड़मूलसे क्रान्ति'[१] में प्रगट किये गये विचार; और तीसरा, 'तालीमकी बुनियादें' पुस्तकमें 'अितिहासकी शिक्षाके विषयमें दृष्टि'[२] में बताया गया निम्न विचार :

> "हमें भूतकालके अनुभवोंके — अितिहासके — ब्योरोंकी स्मृति नहीं है। परन्तु अुन अनुभवोंके द्वारा किये हुअे परिवर्तनोंको हमने अिस जीवनमें भी अनुभव किया है; और हमारी वर्तमान स्थिति अुन संस्कारोंका ही फल है। अितिहासका ज्ञान हमें भले न हो, परन्तु अितिहासका परिणाम क्या हुआ, यह हमसे अज्ञात नहीं है। वह हमारा आजका जीवन है।
>
> "व्यक्ति और समाज दोनोंको यह तत्त्व लागू होता है।"

अिस प्रकार श्री नरहरिभाअीकी भूमिका ही अिस पुस्तकको नवीनता प्रदान करती है। अुसे व्यवस्थित रूप श्री रमणीकलालभाअी मोदीके द्वारा प्राप्त हुआ है। फिर भी पुस्तकका कर्ता मैं माना जाअूंगा! कर्ता कैसे केवल निमित्त ही होता है, अिसका यह अुदाहरण है।

वर्धा, २–६–'५०   कि० घ० मशरूवाला

---

१. नवजीवन द्वारा प्रकाशित। कीमत १–८–०; डाकखर्च ०–६–०।

२. यह लेख आज पढ़ने पर देखता हूं कि 'जड़मूलसे क्रान्ति' में अिस विषय पर प्रगट किये गये विचार अिस लेखमें अधिक विस्तारसे आये हैं। फिर भी खूबी यह है कि 'जड़मूलसे क्रान्ति' के अुस प्रकरणकी खूब चर्चा हुअी और 'तालीमकी बुनियादें' वाले प्रकरण पर किसीने कोअी आलोचना नहीं की!

अनुक्रमणिका

भूमिका

नरहरि द्वा० परीख

पहला भाग : साबरमती

दूसरा भाग : सेवाग्राम

भूमिका

लेखक

नरहरि द्वा० परीख

१

नअी तालीम और स्वावलंबन

१

नअी तालीमका बीज

श्री किशोरलालभाअीकी अिस पुस्तकमें शिक्षा-संबंधी, विशेषत: 'नअी तालीम' अथवा नअी शिक्षा संबंधी लेखोंका संग्रह है। कुछ लेख तो 'नअी तालीम' के नामसे परिचित शिक्षाकी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति आरंभ हुअी अुससे पहलेके लिखे हुअे हैं। परन्तु अिन लेखोंकी विचारसरणी अुसी दिशामें ले जानेवाली है। गांधीजीने हम सबके द्वारा साबरमतीमें शिक्षाका जो प्रयोग शुरू किया, अुससे अुनका सेवाग्रामका प्रयोग किस तरह फलित हुआ, अिसकी अिन लेखोंसे कुछ झांकी मिलती है। अिसलिअे अिस पुस्तकको अुन्होंने 'शिक्षाका विकास' जो नाम दिया है वह सर्वथा अुचित है। चूंकि ये लेख भिन्न भिन्न समय और भिन्न भिन्न अवसरों पर लिखे गये थे, अिसलिअे अेक निबंधमें विषय-प्रतिपादनकी जो अेकसूत्रता होती है वह अिनमें नहीं आ सकी। परन्तु अेक या दूसरे स्थान पर सब मुद्दोंकी चर्चा थोड़ी-बहुत मात्रामें अिसमें जरूर आ जाती है। श्री किशोरलालभाअीने मुझसे कहा कि 'नअी तालीम' — जो वर्धा शिक्षा योजनाके नामसे भी पहचानी जाती है — की चर्चा करनेवाला अेक पूरा लेख अथवा निबंध अिस संग्रहकी पूर्तिरूपमें मैं लिखूं। अुन्होंने जो कुछ कहा है अुससे नया अथवा अधिक मुझे कुछ कहना नहीं है। श्री किशोर-लालभाअीमें मौलिक रीतिसे विचार करनेकी और विषयके मूल तक पहुंच कर अुसका सूक्ष्म पृथक्करण और विशद विवेचन करनेकी जो शक्ति है, वह भी मुझमें नहीं है। फिर भी कुछ न कुछ लिखना मैंने स्वीकार किया। गांधीजीने अपनी शिक्षा-योजनामें स्वावलंबनको विशेष महत्त्वकी वस्तु मान कर अुस पर जोर दिया है। परन्तु अुस पर सफल रूपमें अमल हुआ कहीं दिखाअी नहीं देता। जो स्वावलंबनके अिस तत्त्वको मानते हैं,

वे भी अिनमें सफलता प्राप्त नहीं कर सके। बहुतोंने तो स्वावलंबनके तत्त्वको छोड़ कर ही गांधीजीकी योजना स्वीकार की है। मैंने अिस लेखमें अिस बातकी चर्चा की है कि गांधीजी अिस योजना पर कैसे पहुंचे, स्वावलंबनको वे क्यों महत्त्वपूर्ण मानते हैं और अुसे सिद्ध करनेके लिअे किस प्रकारके प्रयत्न होने चाहिये।

सबसे मूल्यवान भेंट

जब गांधीजीने नअी तालीमका विचार शिक्षाके क्षेत्रमें काम करनेवाले अपने साथियों और मित्रोंके सामने पहले-पहल सन् १९३७ में रखा, तब अुन्होंने कहा था कि मैं अिस देशके सामने और अुसके द्वारा संसारके सामने कुछ नये विचार रखनेका दावा कर सकता हूं। मैंने अब तक जिन विचारोंकी भेंट जगतके चरणोंमें रखी है, अुनमें यह विचार मुझे सबसे अधिक क्रान्तिकारी और अिसलिअे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है। अिससे अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक मूल्यवान भेंट मैं दुनियाके सामने रख सकूंगा, अैसा मुझे नहीं लगता। अिसमें मेरे सारे रचनात्मक कार्यक्रमको व्यावहारिक रूप देनेकी कुंजी समाअी हुअी है। जिस नअी दुनियाके लिअे मैं छटपटा रहा हूं, वह अिसमें से अुत्पन्न की जा सकती है। यह मेरी आखिरी विरासत है। ये अक्षरशः गांधीजीके शब्द नहीं हैं। परन्तु अुस समय जो शब्द अुन्होंने कहे थे, अुनका भावार्थ अिनमें आ जाता है।* अब हम यह देखें कि गांधीजीके शिक्षा-सम्बन्धी विचारोंमें अैसी क्या नअी बात है कि सदा अत्यन्त संयमसे बोलनेवाले गांधीजी अिनके बारेमें अैसा बड़ा दावा करते हैं।

वर्धा-योजनाके मुख्य सिद्धान्त

जिसे शिक्षा अर्थात् पाठशालाकी शिक्षा कहा जाता है, अुसका लाभ अब तक दुनियाके आठ-दस प्रतिशतसे अधिक लोगोंको मुश्किलसे ही मिला होगा। जो आगे बढ़े हुअे देश कहे जाते हैं, वहां शिक्षा-प्राप्त लोगोंका प्रतिशत अधिक होगा। लेकिन पिछड़े हुअे माने जानेवाले देशोंमें, जिनकी

---

* अिस लेखमें आगे भी जहां यह लिखा है कि गांधीजीने फलां बात कही, वहां अिसी प्रकार गांधीजीके अक्षरशः कहे हुअे शब्द नहीं, परन्तु अुनके कथनका भावार्थ ही है।

आवादी वहुत वड़ी है, तो शिक्षितोंका प्रतिशत आठ-दससे भी वहुत कम है। और आगे वढ़े हुअे देशोंमें भी जिसे अुच्च शिक्षा कहा जाता है, अुसका लाभ वहुत थोड़े प्रतिशतको मिल सकता है। अिंग्लैण्ड और अमरीका जैसे देशोंमें भी अुच्च शिक्षा सवको सुलभ नहीं होती। अमीरोंके लड़के या अुच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिअे छात्रवृत्ति प्राप्त करनेमें सौभाग्यशाली सिद्ध होनेवाले थोड़ेसे गरीव विद्यार्थी ही अुसे प्राप्त कर सकते हैं। सौभाग्यशाली शव्द मैं अिसलिअे काममें ले रहा हूं कि सभी गरीव विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियां नहीं मिलतीं। अमीरोंके लड़के तो योग्य हों या न हों, अुच्च शिक्षा प्राप्त करने जा सकते हैं। वड़े साहित्यकार वननेकी, कलाकार वननेकी, वैज्ञानिक वननेकी, शिल्पी वननेकी या अिंजीनियर वननेकी योग्यता जिनमें वीज रूपसे होती है, अैसे कितने ही वालकोंकी शक्तियां अनुकूलताके अभावमें खिले विना रह जाती होंगी। गांधीजीने दुनियाके सामने शिक्षाकी जो योजना रखी है, अुसके अनुसार गरीवीके कारण किसी मनुष्यको अुच्चसे अुच्च शिक्षासे भी वंचित नहीं रहना पड़ेगा। सन् १९३७ में अुन्होंने केवल सातसे चौदह वर्षके वच्चोंके लिअे जिसे नअी तालीम या वुनियादी शिक्षा (वेसिक अेज्युकेशन) कहा जाता है, अुसीकी योजना पेश की थी। अुसमें मुख्य वस्तु यह थी कि वालकोंकी शिक्षा अुनके आसपासकी कुदरती और सामाजिक स्थितिके अनुकूल किसी अुत्पादक अुद्योग द्वारा होनी चाहिये। अुद्योग अैसा चुनना चाहिये, जिसमें वालकको शिक्षा देनेकी अधिकसे अधिक संभावना हो। अुस अुद्योगसे संवंध रखनेवाली तमाम छोटीसे छोटी वातें और क्रियाअें शास्त्रीय पद्धति और कुशलतासे सिखाअी जायं और अुद्योग भी साव-धानी और कुशलतापूर्वक चलाया जाय, तो अुसके द्वारा विद्यार्थीको ठोस शिक्षा दी जा सकती है। अितना ही नहीं, सातों कक्षाओंके विद्यार्थियोंके कुल अुत्पादनकी रकम शिक्षकोंके वेतनके वरावर हो सकती है, वशर्ते कि विद्यार्थियोंका तैयार किया हुआ पक्का माल सरकार खरीद लेनेको तैयार हो। अैसा करनेमें अुनका हेतु शालाको खर्चके वारेमें स्वावलंवी वनानेका था। स्वावलंवनको अुन्होंने अपनी योजनाकी खरी कसौटी (अेसिड टेस्ट) कहा है।

सन् १९४२ में अुन्हें आगाखां महलमें नजरबन्द रखा गया। वहां अुन्हें अपनी अिस योजना पर खूब गहरा चिन्तन करनेका समय मिला।

वर्धा-योजनासे पहले और पीछेकी तालीम

अुन्हें लगा कि मैंने जो सातसे चौदह वर्षके बालकोंको शिक्षाकी योजना दी है वह काफी नहीं है। मनुष्यकी शिक्षा तो गर्भाधानसे आरंभ होती है और अुसका देहान्त होने तक जारी रहती है। अिसलिये आगाखां महलसे बाहर आनेके बाद अुन्होंने सात वर्षसे कमके बालकोंके लिअे पूर्व-बुनियादी शिक्षा, चौदह वर्षसे अूपरकी अुम्रवालोंके लिअे अुत्तर-बुनियादी शिक्षा और विद्यार्थी-अवस्थाकी अुम्रको पार कर चुकनेवाले बड़ी अुम्रके स्त्री-पुरुषोंके लिअे प्रौढ़-शिक्षाकी योजनायें पेश कीं। और अुनकी तफसील निश्चित करनेका काम अुन्होंने अिस प्रकारकी शिक्षाको अमलमें लानेके लिअे स्थापित हिन्दुस्तानी तालीमी संघको सौंपा। शिक्षाके अिन सब क्रमोंमें अलग-अलग ढंगसे स्वावलंबनके तत्त्व पर जोर दिया गया था। अुदाहरणार्थ, बुनियादी शिक्षाके सम्बन्धमें अुन्होंने कहा कि विद्यार्थियोंका अुत्पादन शिक्षकोंके वेतनके बराबर होना चाहिये, जब कि अुत्तर-बुनियादी शिक्षामें अिस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थी अपने भोजन-वस्त्रके लायक अुत्पन्न करके ही शिक्षा प्राप्त करे। अिस प्रकार विद्यार्थी चाहे जितने वर्ष पढ़े, परन्तु अुसके माता-पिता या समाज पर अुसके निर्वाहका भार नहीं पड़ेगा। अिसी तरह प्रौढ़-शिक्षाको भी प्रौढ़ अपनी आजीविकाके लिअे जो धन्धा करता हो अुसके आसपास अिस ढंगसे गूंथना चाहिये कि वह न केवल अपना जीवन अच्छी तरह बिताना सीखे, बल्कि जो धंधा करता हो अुसमें भी अुसकी कुशलता बढ़े और धंधेमें भरसक सुधार करके वह अपना अुत्पादन बढ़ा सके।

यह तो अिस शिक्षा-योजनाका आर्थिक पहलू हुआ। अिस योजनाका विशेष दावा तो यह है कि अुत्पादक अुद्योगके साथ ही

सर्वांगीण विकास

सारी शिक्षाको गूंथ देनेसे, अुत्पादक अुद्योगको शिक्षाका माध्यम बनानेसे, बालकका सर्वांगीण विकास किया जा सकेगा और बालक समाजका अधिक अुपयोगी अंग बन सकेगा। अिस समय अधिकतर किताबी

शिक्षा दी जाती है। जिनमें लिखने-पढ़नेका काम मुख्य हो अैसे मुंशीगिरी या कारकुनीके कामके नये धंधे अिस जमानेमें बहुत चल गये हैं। अुनमें आजकलके पढ़े-लिखे लोग काम देते हैं। हमारे देशमें तो धंधेकी शिक्षा देनेवाली शालाओं और विद्यालयोंमें पढ़े हुअे विद्यार्थी भी वह धंधा स्वतंत्र रूपसे नहीं करते अथवा नहीं कर सकते। अुनमें से अधिकांश अुस धंधेसे सम्बन्धित कारकुनीका काम करते हैं। व्यापारिक कॉलिजोंसे हर साल सैकड़ों ग्रेज्युअेट निकलते होंगे। अुनमें से बड़े तो क्या परन्तु छोटे व्यापारी भी बहुत कम लोग होते हैं। अधिकांश व्यापारिक ग्रेज्युअेट व्यापारिक पेढ़ियों या कंपनियोंमें कारकुनीका काम ही करते पाये जाते हैं। यही हाल विज्ञान और खेतीके ग्रेज्युअेटोंका है। वे अपने-अपने धंधोंका पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करते हैं, परन्तु अुन धंधोंको चलानेके लिअे आवश्यक प्रत्यक्ष और व्यावहारिक कामोंमें वे कच्चे साबित होते हैं। अिसलिअे अुनके जीवन अुन धंधोंके सम्बन्धमें भी परोपजीवी रहते हैं। अुनके जीवनका भार अुन धंधोंके मेहनत-मजदूरी करनेवाले वर्ग पर पड़ता है। अुन्हें जितना वेतन मिलता है, अुसकी तुलनामें अुन धंधोंके सामूहिक अुत्पादनमें अुनका बहुत थोड़ा हाथ होता है। गांधीजीकी यह योजना अैसी है जिसमें मनुष्यकी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंका समान विकास होनेके साथ अुसकी बुद्धि और सूझबूझका भी विकास होता है। वह जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, वह निश्चित होता है और अुसे व्यवहारमें लानेकी कुशलता अुसमें होती है।

श्रमकी महिमा

शिक्षाकी अिस योजनामें शरीर-श्रम, स्वाश्रय, दूसरोंके साथ मिलजुल कर काम करनेकी वृत्ति, व्यवस्था-शक्ति आदि गुणोंका बालकमें छुटपनसे ही विकास होता है। किसी भी प्रकारका अुपयोगी काम करनेमें अुसे अरुचि नहीं होती, घृणा नहीं आती या हीनता अनुभव नहीं होती। आजकल समाजमें पाये जानेवाले अूंच-नीचके भेदभावमें तथा दूसरोंकी मेहनतसे लाभ अुठानेकी वृत्तिमें मूल कारण शरीर-श्रमकी अरुचि ही है। अिस योजनामें बालककी शरीर-श्रम करने तथा सबको समान माननेकी स्वाभाविक वृत्तियोंको अुचित पोषण दिया जाता है।

आजकल दुनियामें जिस प्रकारकी शिक्षा प्रचलित है, वह व्यवहारमें और परिणाममें आर्थिक और समाजिक असमानता अुत्पन्न करनेवाली, मेहनत-मजदूरी करनेवाले वर्गका शोषण करनेवाली और अिसलिये रक्तपात और युद्धोंको पोषण देनेवाली साबित हुअी है। जब कि बुनियादी शिक्षा अिन चीजोंकी जड़ पर आघात करनेवाली है, अहिंसक समाज-रचनाको नजदीक लानेवाली है।

२

संक्षिप्त अितिहास

सन् १९३७ में जब देशके अधिकतर प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडल बने, तब गांधीजीने अुन्हें आग्रहपूर्वक कहना शुरू किया कि शराबबन्दीके कार्यक्रम पर हमें कितना ही अधिक नुकसान अुठाकर भी अमल करना चाहिये। मंत्रीगण अिस विचारके अनुकूल ही थे। अुनके सामने मुख्य कठिनाअी पैसेकी थी। शराबकी आय छोड़ दी जाय तो सरकारके मौजूदा खर्चको पूरा करनेके लिअे दूसरे कर लगाना चाहिये अथवा सरकारको मौजूदा खर्चमें कमी करनी चाहिये। गांधीजीने सोचा कि शिक्षाका सारा स्वरूप ही बदल दिया जाय तो शिक्षामें भी महत्त्वपूर्ण सुधार किये जा सकते हैं और अुसका खर्च भी घटाया जा सकता है। अिस प्रकार शराबबन्दी अिस योजनाका निमित्त बनी, परन्तु गांधीजीके दिमागमें तो और कअी कारणोंसे यह योजना पक रही थी। गांधीजी दक्षिण अफ्रीकामें थे तब अुन्होंने देखा था कि भारतीय बालकोंको वहांकी सार्वजनिक शालाओंमें भरती नहीं किया जाता। वे शालाअें खासकर यूरोपीयोंके लिअे ही चलाअी जाती थीं। गांधीजीके बच्चोंको अपवादके रूपमें अैसी किसी भी शालामें प्रवेश मिल सकता था। परन्तु समाजके दूसरे बालकोंको जो लाभ नहीं मिलता था, अुसे अपने बच्चोंके लिअे लेना गांधीजीको ठीक नहीं लगा। अिसलिअे अुन्होंने घर पर और अधिकतर स्वयं ही बच्चोंको पढ़ाना शुरू किया। बादमें अुन्होंने फिनिक्स आश्रम स्थापित किया और वहां सादा और शरीर-श्रमवाला जीवन व्यतीत करने लगे। फिनिक्स आश्रममें अुनके बच्चोंके अलावा साथियोंके बच्चे भी थे। अुन सबकी शिक्षाका कोअी निश्चित प्रबंध

करनेकी जरूरत पैदा हुआी। अिस नये जीवनके अनुरूप शिक्षा देनी हो तो अुसमें शरीर-श्रम और अुद्योगका स्थान होना चाहिये, यह सिद्धान्त तय हुआ और साक्षरी विषयों* के अलावा अुद्योग सिखाना आरंभ किया गया। परन्तु सत्याग्रहकी लड़ाअियां और दूसरे कअी विक्षेप वहां आये, अिसलिअे गांधीजी शिक्षाके प्रश्नमें अधिक बारीकीसे नहीं अुतर सके। हिन्दुस्तानमें आनेके बाद साबरमती आश्रममें गांधीजीने अपने शिक्षाके प्रयोग अधिक व्यवस्थित रूपमें और बड़े पैमाने पर आरंभ किये। अुनमें हम सब शरीक हुअे। गांधीजी स्वयं भी अुनमें अच्छी तरह भाग लेनेकी अिच्छा रखते थे। परंतु अुन पर अेकके बाद अेक अैसे काम आते गये कि प्रत्यक्ष शिक्षणका काम वे कर ही न सके। अुन्होंने जितनी आशा रखी थी अुतना समय वे हमें भी नहीं दे सके। प्रवाससे आश्रममें आते तब हमारे और विद्यार्थियोंके साथ चर्चा करते थे। क्या चल रहा है, यह जान लेते थे और कोअी सूचनाअें देने लायक होतीं तो दे देते थे। परंतु अुद्योगकी कक्षाअें अलग और साक्षरी विषयोंकी कक्षाअें अलग, अिन दोनोंके बीच कोअी मेल या संबंध नहीं — शिक्षाका यही प्रकार चल रहा था। अुद्योग-शिक्षणका काम आश्रमके कुछ भाअी श्री मगनलाल-भाअी गांधीकी देखरेखमें करते थे। साक्षरी विषयोंकी कक्षाअें हम शिक्षक कहलानेवाले लोग चलाते थे। परंतु अुद्योगके साथ साक्षरी विषयोंका अनुबंध करनेकी बात हममें से किसीको नहीं सूझी थी। शालाको शुरू हुअे अेक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था कि गांधीजीको लगा कि शालाके शिक्षकोंको जब तक अुद्योग नहीं आता, तब तक वे राष्ट्रीय शिक्षक नहीं कहला सकते। अिसलिअे अुन्होंने तय किया कि हम नये विद्यार्थी न लें और कम-से-कम

---

* 'अेकेडेमिक सब्जेक्ट्स' के लिअे 'साक्षरी विषय' शब्द मैंने बनाया है। आजकल अुनके लिअे 'बौद्धिक विषय' शब्द काममें लिया जाता है। परंतु वह ठीक नहीं है। अुसमें यह गलत मान्यता है कि किताबी ज्ञानवाले विषय ही बौद्धिक होते हैं और अुद्योगका तथा जीवनके लिअे अुपयोगी अन्य प्रवृत्तियोंका बुद्धिके साथ कोअी संबंध नहीं होता! वस्तुतः अुद्योगमें और दूसरी प्रवृत्तियोंमें बुद्धिका ज्यादा विकास होता है। किताबी विषयोंमें तो रटाअीकी तरफ चले जानेका भय रहता है।

चार घंटे अुद्योग सीखनेमें दें। अिस प्रकार शालाका काम रोक कर हमने अुद्योग सीखना शुरू किया, तब भी यह स्पष्टता नहीं हुअी थी कि अुद्योग-शिक्षक भी हमींको बनना है और साक्षरी विषयों तथा अुद्योगके बीच कोअी संबंध जोड़ना है। हममें से तो किसीको यह विचार ही नहीं सूझा था। गांधीजीके मनमें भी यह विचार बहुत अस्पष्ट दशामें रहा होगा। हां, हमारे बीच यह बात बहुत बार होती थी कि हम अुद्योग अिसीलिअे अनिवार्य रूपमें सिखाते हैं कि आज जो शिक्षित माने जाते हैं अुन्हें कारीगरीका कोअी काम करना नहीं आता और जो कारीगर हैं अुनमें साक्षरी शिक्षाके संस्कार नहीं होते। राष्ट्रीय शिक्षामें साक्षरी विषयोंके साथ अुद्योगकी शिक्षाको रखनेसे दोनों वर्गोंमें जो न्यूनता है वह पूरी हो जायगी। परंतु हमें यह कल्पना नहीं थी कि हमारे विद्यार्थियोंमें से कोअी अुद्योग सीखकर किसान या जुलाहा बन जायगा। अुस समयके विद्यार्थियों या शिक्षकोंमें से कोअी किसान या जुलाहा बना भी नहीं था। आज विचार करने पर अैसा लगता है कि हम शिक्षक और विद्यार्थी अुद्योग क्या सीखते थे अेक खेल ही करते थे। हम शिक्षक तर्कसे अपने मनको मना लेते थे कि यह अुपयोगी काम है, अिससे हमारा जीवन-निर्माण होता है और कारीगर तथा मजदूर-वर्गके साथ हमारा संबंध बंधता है। परंतु अधिकांश विद्यार्थियोंका तो यह निश्चित मत था कि अुनके समयका बिगाड़ ही हो रहा है; शिक्षक तो साक्षरी विषयोंमें निपुणता प्राप्त कर चुके हैं, परंतु हमारा समय अुद्योगोंमें चला जाता है, अिसलिअे साक्षरी विषयोंमें हम प्रगति नहीं कर सकते। अन्तमें अुन्होंने हमारे विरुद्ध विद्रोह किया और हमें छोड़कर विश्वविद्यालयकी शिक्षा लेने चले गये। ये विद्यार्थी गांधीजीके अति निकट संबंधमें रहे हुअे थे। अुन्होंने विशेष रूपसे गांधीजीका प्रेम संपादन किया था। अुनके विषयमें गांधीजीने बड़ी बड़ी आशायें बांधी थीं। अिन विद्यार्थियोंने विश्वविद्यालयकी शिक्षा लेनेके लिअे आश्रम छोड़नेकी अनुमति मांगी, तब गांधीजीने खुशीसे अनुमति तो दे दी, परंतु अुनके हृदयको सख्त चोट भी लगी। अुन्हें प्रतीति हो गअी कि अुनके प्रयोगमें कोअी न कोअी बड़ी त्रुटि है और अुस त्रुटिको वे खोज करने लगे। अुन्हें अैसा दिखाअी देने लगा कि विद्यार्थियोंकी अुद्योगमें दिल-

रुची न होनेका कारण यह था कि अुद्योग ज्ञानपूर्वक नहीं सिखाया जाता था। अुद्योगका दूसरी शिक्षाके साथ या विद्यार्थियोंके जीवनके साथ कोअी संबंध नहीं जोड़ा जा सका था। जीवन-विकासके अेक मुख्य साधनके रूपमें हमने अुद्योगका अुपयोग नहीं किया था। हम शिक्षकोंको अैसा करना आया ही नहीं था। और अिसलिअे अुद्योगको प्रामाणिक जीवनका आधार मानने और अुसमें अेक प्रकारकी जीवनकी सार्थकता अथवा धन्यता अनुभव करनेकी बात विद्यार्थी समझ ही नहीं सके थे। विचारोंका यह मंथन गांधीजीके हृदयमें चल ही रहा था कि अितनेमें अिस प्रश्न पर अुन्हें विचार करना पड़ा कि शराबबन्दी करनी हो तो पैसेकी कठिनाअी कैसे दूर की जाय। अुसमें से अुन्हें शिक्षाकी यह नअी योजना सूझी। अुन्होंने तत्कालीन प्रान्तीय सरकारोंके सामने यह बात रखी कि विद्यार्थियोंके आसपासकी परिस्थितिके अनुकूल अुत्पादक अुद्योग द्वारा अुनकी सारी शिक्षा हो, तो शिक्षा अधिक ठोस हो सकती है और विद्यार्थियोंके अुत्पादनसे शालाको स्वावलंबी भी बनाया जा सकता है। प्रश्न तो अितना ही था कि शराब-बन्दीके कारण जो आय छोड़नी पड़ रही है, अुसे किस तरह पूरा किया जाय। परंतु गांधीजीने केवल अितना ही विचार नहीं किया। अुनकी विचार करनेकी पद्धति किसी भी प्रश्नको समग्र दृष्टिसे जांचनेकी थी। अिसलिअे वे अिस विचारमें पड़ गये कि सारे देशके सातसे चौदह वर्षके बालकोंके लिअे अुचित शिक्षा कैसी हो और वह सबके लिअे कैसे सुलभ बनाअी जाय? अिस अुम्रके सारे बालकोंको शिक्षा देनी हो तो सरकारको कितनी ही नअी शालाअें खोलनी पड़ेंगी। जितनी शालाअें आज हैं अुन्हींको चलानेके लिअे जब सरकारको पैसेकी कठिनाअी होती है, तब नअी शालाअें कैसे खोली जा सकती हैं? शालाअें चलानेमें मुख्य खर्च शिक्षकोंके वेतनका होता है। अुसे मिटानेके लिअे अुन्होंने कहा कि सातों कक्षाओंके विद्यार्थियोंके अुद्योगके कुल अुत्पादनसे शालाके तमाम शिक्षकोंके वेतनके जितनी आय होनी चाहिये।

अिसके विरुद्ध मित्रोंने यह आपत्ति अुठाअी कि अगर आप स्वाव-लंबनका आग्रह रखेंगे, तो शिक्षक बालकोंसे अुनके बूतेके बाहर और अुनकी मरजीके खिलाफ श्रम करायेंगे। अिससे तो बालकोंके

बच्चोंका शोषण? शोषणका बड़ा प्रश्न खड़ा हो जायगा।

अिसके अुत्तरमें गांधीजीने बताया कि स्वावलंबनको आवश्यक माननेमें मेरी दृष्टि शुद्ध शिक्षाकी ही है। अुद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धतिको आप शिक्षाकी अुत्तम पद्धतिके रूपमें स्वीकार करते हों, तो वह तभी अुत्तम हो सकती है और अुसके द्वारा बालकोंको ठोस शिक्षा तभी मिल सकती है, जब बालक सच्चा अुद्योग करें, अुद्योगके साथ खिलवाड़ न करें, अुद्योगमें अपना समय न बिगाड़ें और अुद्योगमें जो कच्चा माल और औजार काममें लिये जाते हों अुनका पूरी सावधानीसे अुपयोग करना जानें। समय, माल या औजारोंका बिगाड़ होता हो तब तो यह माना जायगा कि हम बच्चोंको गलत शिक्षा देते हैं, हम अुनका नुकसान करते हैं। हमारा दावा तो यह है कि अुद्योग द्वारा शिक्षा देनेसे बालककी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके सच्चे विकासके साथ अुसकी बुद्धि और हृदयका विकास भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है। यह दावा तभी सच्चा साबित होगा जब बालकको अपने शरीर और मन दोनोंकी सारी शक्ति लगाकर काम करनेकी आदत पड़े, अपने काममें आनेवाले औजारोंको अच्छी तरह रखना आवे और वह किसी तरहका बिगाड़ न करनेकी बात सीखे। स्वाभाविक रूपमें जिस बालकका पालन-पोषण हुआ हो, अुसे खुद काम करना पसन्द होता ही है। दूसरेसे सुनकर ज्ञान प्राप्त करनेकी अपेक्षा स्वयं निरीक्षण करके और स्वयं प्रयोग करके ज्ञान प्राप्त करना अुसे अधिक रुचिकर लगता है। शिक्षक स्वयं अुद्योगमें कुशल होगा, अुद्योगकी सारी क्रियाअें कारण देकर समझाना अुसे आता होगा और अुद्योगमें बालककी दिलचस्पी पैदा करनेकी कला अुसमें होगी, तो बालक बड़े शौकसे अुद्योग करेगा। यह तो हम अनुभवसे प्रत्यक्ष देख सकेंगे कि अुसीसे बालकको अधिक अच्छी शिक्षा मिलती है। अिसमें बालकसे जबरन् मेहनत करानेका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। बालककी शक्तिके अनुसार अुत्पादन न हो, तब तो अुलटा ही परिणाम आयेगा। बालकको संतोष नहीं होगा और अुसमें निराशाकी भावना पैदा होगी।

यह माननेकी जरूरत नहीं कि अिन दलीलोंसे सभी मित्रोंको संतोष हुआ होगा, क्योंकि आज भी अुनमें से कुछ स्वावलंबनके बारेमें अुत्साह नहीं रखते। हां, अितना विश्वास अुन्हें अवश्य हो गया

है कि शिक्षाकी दृष्टिसे अुद्योग चलाना हो तो अुसमें जरा भी विगाड़ नहीं होना चाहिये। वैसे, अभी तक तो वहुतसे शिक्षक यही मानते थे कि शालामें शिक्षाकी दृष्टिसे अुद्योग चलाना हो तो विगाड़ होता ही है। शाला कोअी कारखाना नहीं है कि वहां अुत्पादन और आयका हिसाव लगाया जाय।

'प्रोजेक्ट मेथड' से भेद

दूसरी वात शिक्षाशास्त्री मित्रोंने गांधीजीको यह कही कि अुद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी आप जो वात करते हैं वह कोअी नयी नहीं है। शिक्षाके क्षेत्रमें नयेसे नया विचार यह है कि वालकको केवल पुस्तकों द्वारा अथवा श्रवण, वाचन तथा लेखन द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धति वड़ी दोषपूर्ण है। हेतुपूर्वक नियोजित किसी प्रवृत्ति द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धति ही अुत्तम है। यह कहकर अुन्होंने 'प्रोजेक्ट मेथड'* की, जो नअीसे नअी शिक्षा-पद्धति मानी जाती है, वात की और यह वताया कि आपकी

---

* किसी वस्तुकी जानकारी देनी हो तो मुंहसे अुसका वर्णन करनेके वजाय अुससे संवंध रखनेवाली सारी क्रियाअें और सारा व्यवहार वालकोंसे योजनापूर्वक कराकर अुस वस्तुका ज्ञान देनेकी पद्धति। अुदाहरणार्थ, हमें अपने लिखे हुअे पत्रादि जिन्हें भेजने हों अुन लोगों तक डाक-विभाग पत्रादि किस प्रकार पहुंचाता है, अिसका वर्णन करनेके वजाय डाक-विभागके सारे व्यवहारकी व्यवस्था शालामें कृत्रिम ढंगसे करके अुसके सारे काम वालकोंसे कराये जायं। कोअी वालक पोस्ट मास्टर वने, कोअी डाकिया वने और कोअी पत्रोंको गांववार छांटनेवाला 'सॉर्टर' वने। शालामें कुछ डाकघर वनाये जायं। वालक अेक-दूसरेको पत्र लिखकर जो डाकघर अपने गांवका माना जाता हो अुसके डिव्वेमें डाल आयें। डाकिया वना हुआ लड़का अुसमें से पत्र निकालकर अुस पर मुहर लगावे और दूसरे गांव पहुंचानेके लिअे नजदीकके स्टेशन पर दे आये। वहांसे वे कृत्रिम ढंगसे वनाअी हुअी रेलगाड़ीके डाकके डिव्वेमें जायं। वहां सॉर्टर अुन्हें गांववार छांटे और प्रत्येक गांवके पत्रोंके थैले अुन गांवोंके नजदीकके स्टेशन आने पर वहां दे दे, अित्यादि।

शिक्षा-योजना वैसी ही है। गांधीजीने कहा कि 'प्रोजेक्ट मेथड' क्या है, सो मैं नहीं जानता। मैंने अपने विचार अिस विषयकी कोअी पुस्तकें पढ़कर नहीं लिये हैं। यह योजना स्वतंत्र रूपमें विचार करके निकाली हुअी है। परंतु आप अिस पद्धतिका जैसा वर्णन कर रहे हैं अुस परसे मुझे लगता है कि मेरी योजना अुससे बिलकुल भिन्न है। अिस पद्धतिमें तो जिस विषय या वस्तुकी शिक्षा देनी है अुससे संबंधित अुसकी योजना अथवा प्रवृत्ति कृत्रिम रूपमें पैदा की जाती है। वह अैसी सच्ची प्रवृत्ति या सच्ची वस्तु नहीं होती, जो मनुष्यके अुपयोगमें आये। अुस पर किया गया खर्च और बालकों द्वारा किया गया श्रम समाजमें किसीके काममें नहीं आता। यह हो सकता है कि अिस पद्धतिसे वस्तु अथवा विषयका ज्ञान बालकको अच्छी तरह कराया जा सके। परंतु अिस पद्धतिमें शिक्षा अितनी खर्चीली बन जायेगी कि अुसका लाभ थोड़ेसे धनिक वर्गके बालक ही अुठा सकेंगे। मुझे तो अुत्तम शिक्षाको गरीबसे गरीब वर्गके बालकोंके लिअे भी सुलभ बना देना है। अिसीलिअे स्वावलंबनको मैं अपनी योजनाकी सच्ची कसौटी कहता हूं। जिन अुद्योगों द्वारा शिक्षा देनेके लिअे मैं कहता हूं, वे केवल बालकोंके मनोरंजन, खेल, या शिक्षाके लिअे नियोजित कृत्रिम अुद्योग अथवा प्रवृत्तियां नहीं हैं, परंतु देशके लाखों अथवा करोड़ों लोगोंके जीवन-निर्वाहके साधन बन सकनेवाले सच्चे अुद्योग हैं।

अिस प्रकार गांधीजीने अपनी योजना मित्रों तथा शिक्षा-विभागके मंत्रियों और अधिकारियोंके सामने रखी। फिर अुसे व्यवस्थित रूप देने तथा अुसका पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिअे अेक कमेटी नियुक्त की गअी। कमेटीने सुझाया कि अुत्पादक अुद्योगके अलावा जिस कुदरत और समाजके बीच बालक रहता है, अुसे भी शिक्षाका माध्यम अथवा केन्द्र बनाया जाय। अुद्योगका चुनाव करनेमें आसपासकी कुदरत और समाजकी परिस्थितिका विचार तो करना ही पड़ेगा, अिसलिअे अुनका परिचय भी आवश्यक है। अुत्पादक अुद्योग शिक्षाका मुख्य माध्यम हो और आसपासकी कुदरत और समाज अुप-माध्यम बनें। स्वावलंबनके संबंधमें कमेटीने यह आशा व्यक्त की कि शिक्षकोंके वेतनके लायक खर्च बालकोंके अुद्योगसे धीरे धीरे निकल सकेगा।

३

स्वावलंबनका प्रश्न

हमारे अलग अलग प्रान्तों, जिन्हें अब राज्य कहा जाता है, की सरकारोंने गांधीजीकी योजनाके अनुसार प्रयोग शुरू किये। थोड़े ही समयमें अुनकी समझमें आ गया होगा अथवा पहलेसे यह समझ कर ही अुन्होंने प्रयोग शुरू किये होंगे कि हम स्वावलंबनके ध्येय तक नहीं पहुंच सकेंगे। अुनको शायद यह भी लगा होगा कि शुद्ध शिक्षाकी दृष्टिसे विचार किया जाय, तो गांधीजी स्वावलंबनको जो महत्त्व देते हैं वह देनेकी जरूरत नहीं। गांधीजीकी योजनामें अच्छी शिक्षाके जो दूसरे तत्त्व हैं, जैसे साक्षरी विषयोंका बालकोंकी अलग अलग प्रवृत्तियोंके साथ अनुबंध करना वगैरा, वे अुन्होंने स्वीकार किये और अुन पर अमल करनेका प्रयत्न किया। व्यक्तिगत और सामूहिक सफाअी संबंधी प्रवृत्तियां की जायं; राष्ट्रीय, धार्मिक और ऋतुओंके अुत्सव मनाये जायं; जिन घटनाओंसे मनोरंजनके साथ शिक्षा मिलनेकी संभावना हो अुन्हें बालकोंके नाटयप्रयोगोंमें बताया जाय; छोटे छोटे पर्यटनोंकी व्यवस्था की जाय; शाला-संबंधी तमाम कामकाजकी व्यवस्था बालकोंको सौंप कर अुन्हें स्वराज्यकी तालीम दी जाय; बच्चोंसे हस्तलिखित पत्र निकलवाये जायं — अिस प्रकारकी प्रवृत्तियोंको अुन्होंने बालकोंकी शिक्षाके महत्त्वपूर्ण अंग मानना स्वीकार किया। अिसके साथ साथ थोड़ा समय बालक अुत्पादक अुद्योगमें दें, अिसे भी अुन्होंने आवश्यक समझा। और अुद्योग तथा अन्य प्रवृत्तियोंका अनुबंध करके साक्षरी विषय सिखाना शुरू किया। परंतु अुद्योग द्वारा शालाको स्वावलंबी बनानेका विचार अुन्हें असंभव जान पड़ा। परिणाम यह हुआ कि अुद्योग और दूसरी प्रवृत्तियां जारी करनेके कारण अिन नअी शालाओंका खर्च कम होनेके बजाय पुरानी पद्धतिकी पाठशालाओंसे अुलटा बढ़ गया। अुद्योग कुशलतापूर्वक न चला सकनेके कारण अुसमें जो बिगाड़ होता है वह अभी तक रोका नहीं जा सका है। अैसी आलोचनाअें भी होने लगी हैं कि यह तो जनताके धनका अपव्यय हो रहा है और बालकोंकी साक्षरी शिक्षाका स्तर गिरता जा रहा है। अैसी आलोचनाओंके अुत्तरमें बम्बअी सरकारने

हालमें अेक वक्तव्य प्रकाशित किया है। अुसमें शिक्षाकी दृष्टिसे अिस प्रयोगके क्या क्या अच्छे परिणाम हुअे हैं, यह बताकर कहा गया है कि अब तकके अनुभवसे अैसा लगता है कि अुद्योगके सिलसिलेमें जो अतिरिक्त चालू खर्च होता है अुतना तो अुद्योगसे निकालना संभव है। कुछ शालाओंमें बालकोंके वस्त्र-स्वावलंबी मंडल बने हैं, यह हकीकत भी अुसमें बताअी गअी है।

साक्षरी विषयोंके बारेमें असंतोष

अुद्योग अच्छी तरह चला सकनेके लिअे तमाम शिक्षकोंको अुनकी दूसरी तालीमके साथ अुद्योगका विषय सिखानेकी सरकारने योजना बनाअी है। और जैसे जैसे शिक्षक तैयार होते जायंगे, वैसे वैसे तमाम प्रारंभिक शालाओंमें अुद्योग और अनुबद्ध शिक्षा जारी कर दी जायगी। परंतु अिस नीति पर अमल करनेके साथ शिक्षा-विभागके अधिकारियोंके मनमें यह चिन्ता बनी ही रही है कि साक्षरी विषयोंके ज्ञानका स्तर जरा भी गिरना न चाहिये। नयी पद्धतिमें साक्षरी विषयोंके पुराने ढंगके ज्ञानकी अपेक्षा रखी जाय, तो अुसे पहले जितनी मात्रामें देना कठिन है। क्योंकि जितना समय दूसरी प्रवृत्तियोंमें जायगा, अुतना साक्षरी विषयोंका काम कम हो जाना स्वाभाविक है। यह बात सच है कि प्रवृत्तियोंके साथ अनुबंध साध कर सिखानेकी पद्धतिसे साक्षरी विषयोंका ज्ञान अधिक अच्छी तरह दिया जा सकता है। परंतु वाचन-लेखन द्वारा ही मिल सकनेवाले और जिसके लिअे रटाअीका भी आसरा लेना पड़े अैसे ज्ञानकी अपेक्षा पाठ्यक्रमों और परीक्षाओंमें रखी जाय तो अुसके लिअे थोड़ा ही समय मिलेगा। अिसका सही अुपाय तो यह है कि पाठ्यक्रममें जड़मूलसे परिवर्तन करने चाहिये और परीक्षाओंका स्वरूप भी जड़से ही बदलना चाहिये। परंतु अभी तक अैसा किया नहीं जा सका। अैसे बुनियादी परिवर्तन करनेका या तो साहस नहीं हुआ या वे परिवर्तन करनेकी जरूरत ही महसूस नहीं हुअी। अिसके लिअे सरकारी अधिकारियोंके साथ गैर-सरकारी कार्यकर्ता भी जिम्मेदार हैं, क्योंकि अिस प्रयोगके संबंधमें सरकारको सलाह देनेके लिअे अुसके द्वारा नियुक्त 'बेसिक अेज्युकेशन बोर्ड' में सरकारी सदस्योंसे गैर-सरकारी सदस्योंकी संख्या

अधिक है। अिस स्थितिके लिअे मैं अपनेको भी जिम्मेदार मानता हूं, क्योंकि अढ़ाअी वर्ष पहले बीमार होकर अपंग जैसा बन जानेसे पहले मैं अिस बोर्डका अध्यक्ष था। अिस बोर्डकी सलाहकी सरकारने अुपेक्षा की हो, अैसी अेक भी घटना मुझे याद नहीं।

शालाओंकी अुद्योग-संबंधी त्रुटियां

सरकारी विज्ञप्तिमें जितना कहा गया है अुतना भी अभी तक तो अच्छी तरह अमलमें नहीं लाया जा सका है। जिन प्रवृत्तियोंकी बात अूपर बताअी गअी है, वे सब शालाओंमें अच्छी तरह होती नहीं देखी जातीं और अुद्योगके सिलसिलेमें होनेवाला खर्च अुद्योगसे मिल जानेकी जो आशा प्रगट की गअी है वह भी शायद ही कहीं पूरी हुअी है। अभी तक कच्चे माल और साधनोंका बिगाड़ होना रोका नहीं जा सका है।* कुछ शालाओंका प्रबंध सरकारने गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंको सौंप दिया है। अुसमें भी अुद्योगके मामलेमें जैसी चाहिये वैसी प्रगति अभी तक शायद ही कोअी शाला दिखा सकी है। मैंने सुना है कि अकेली कराड़ीकी बुनियादी शालामें स्वावलंबनकी दृष्टिसे आशाजनक परिणाम आये हैं। अिसका मुख्य कारण यह है कि अुस गांवकी आबादी कुशल कारीगर लोगोंकी है, वे सन् १९२१ से खादीके बारेमें कुछ न कुछ परिश्रम करते आये हैं, वहांके शिक्षक अुत्साही हैं और अुन्हें लोगोंका अच्छा सहयोग मिलता है। परंतु दूसरी शालाओंमें जैसे चाहिये वैसे परिणाम दिखाअी नहीं देते। अिसके कअी कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि शिक्षकोंको स्वयं अभी तक अुद्योग अच्छी तरह नहीं आता। अुन्हें अधकचरा अुद्योग सिखाकर अुनके द्वारा शालामें अुद्योग जारी करनेकी हम अुतावली करते हैं। ट्रेनिंग कॉलेजके, जहां अिस योजनाके अनुसार शिक्षणकी खास तालीम देनेका दावा किया जाता है, अध्यापक वहां चलनेवाले अुद्योगोंमें से कम-से-कम अेक अुद्योगमें तो अच्छे निष्णात होने ही चाहिये। तो ही अुद्योगकी विविध क्रियाओंमें

---

* यह वर्णन बम्बअी राज्यकी शालाओंका और अुनमें भी गुजरातकी शालाओंका है।

बालकोंकी कर्मेन्द्रियां तथा ज्ञानेन्द्रियोंके विकासकी कितनी संभावना है तथा अुनके साथ साक्षरी विषयोंकी कौन कौनसी और कितनी जानकारीका अनुबंध हो सकता है, यह वे अपने अनुभवसे जान सकते और सिखा सकते हैं। साथ ही अुन्हें आसपासकी कुदरत और समाजका केवल पुस्तकोंसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान नहीं, परंतु प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये। यह भी संभव है कि कुछ अध्यापकोंको अिस प्रयोग पर श्रद्धा ही न हो। ये सब न्यूनतायें तालीम देनेवाले अध्यापकोंमें काफी मात्रामें होंगी। अिन न्यूनताओंको वे पुस्तकोंसे प्राप्त शिक्षा द्वारा और तर्क दौड़ाकर किये गये अनुमानों द्वारा ही पूरी कर लेनेका प्रयत्न करते होंगे। परंतु अिसमें आनंद नहीं आता। हमारा सब काम छिछला ही रहता है। जिनके सिर पर सारी योजनाका ब्योरा तय करके देने, योजनाको अमलमें लानेवाले शिक्षकोंको तालीम देने और अुन्हें रास्ता बतानेकी जिम्मेदारी है, अुन्हींकी अैसी स्थिति हो तो अिसका अर्थ यह हुआ कि अिस योजनामें अुद्योगको शिक्षाका अेक महत्त्वपूर्ण साधन मानते हुअे भी अुसकी पूरी साधना किये बिना अिस योजनाको अमलमें लानेकी जिम्मेदारी हमने अुठाअी है। यह बात वैसी ही है जैसे कोअी ककहरा और बारहखड़ी आये बिना भाषा सिखाने लगे अथवा अिस बातकी तालीम देने लगे कि भाषाकी शिक्षा कैसे दी जाय। ट्रेनिंग कॉलिजोंमें अुद्योग सिखलानेके लिअे हम अलग अुद्योग-शिक्षक रखते हैं। यह अुद्योग-शिक्षक शिक्षाकी दृष्टिसे अुद्योगका महत्त्व नहीं समझता। अनुबंधकी पद्धतिकी अुसे कोअी कल्पना नहीं होती। अुसे अिस प्रकारके शिक्षाशास्त्रका ज्ञान होना चाहिये, यह आवश्यक नहीं माना जाता। अिस अुद्योग-शिक्षकके वेतनका ग्रेड और विभागमें अुसका दरजा साक्षरी विषयोंके शिक्षकोंकी अपेक्षा घटिया होता है। जो शिक्षाशास्त्री माने जाते हैं अुनका यह खयाल है कि भले ही अुद्योगमें हम निपुण न हों, लेकिन अुद्योगके संचालनके सिद्धान्त तो हम समझते हैं। अिसलिअे अुसके साथ हम दूसरे विषयोंका अनुबंध कर सकते हैं और अुसे करनेकी पद्धति सिखा भी सकते हैं। यह स्थिति बुनियादी शालाके शिक्षकोंके भी शिक्षकोंको, जो ग्रेज्युअेट होते हैं, तालीम देनेके लिअे खुले हुअे कॉलिजोंके अध्यापकोंकी तथा बुनियादी शालाके अध्यापकोंको तालीम

देनेवाले अध्यापकोंकी है। अुद्योग-निरीक्षकों (क्राफ्ट सुपरवाअिजरों) की भी कम-ज्यादा यही हालत होती है।

अधिक कठिनाअी तो शालाके शिक्षकोंके मानसकी है। अुन्हें अनेक कारणोंसे अपनी नौकरीके बारेमें बड़ा असंतोष है। अिसलिअे अुनमें अिस कामके लिअे अुत्साह या रस नहीं पाया जाता।

शिक्षकोंकी कमियां

अुनकी जानकारी और योग्यता भी बहुत कम होती है। शिक्षककी नौकरीमें भरती होनेके लिअे प्राथमिक शालान्त परीक्षा पास होनेका जो स्तर रखा गया है, वह बहुत नीचे दरजेका है। सिखाये जानेवाले विषयोंकी अिन शिक्षकोंको बहुत कम जानकारी होती है। व्यवस्थितता, निश्चितता, नियमितता और स्वच्छताकी तमाम आदतोंके बारेमें अुनमें बहुत कमियां पाअी जाती हैं। जिन लोगोंके विचार जीवन-संबंधी साधारण बातोंमें भी अनुभवसे परिपक्व न हुअे हों, वे भी शिक्षक हो सकते हैं। जो मनुष्य होशियार और अुत्साही होता है, वह तो शिक्षकके धंधेमें आता ही नहीं। जो आते हैं वे यह शिकायत करते रहते हैं कि अिस नौकरीमें निर्वाहके लायक पैसा भी नहीं मिलता। अिन शिक्षकोंको अुद्योगकी तालीम पानेके लिअे आश्रमोंमें अथवा अन्यत्र खोले गये केन्द्रोंमें भेजा जाता है। वहां जानेके लिअे और जाकर अेकाग्र मनसे तालीम पानेके लिअे बहुत थोड़े शिक्षक राजी होते हैं। अधिकांश शिक्षक तो यही सोचकर तालीम लेने जाते हैं कि नौकरीमें पड़ गये हैं और नौकरी करनी है, अिसलिअे अफसरोंके हुक्मकी तामील करनी चाहिये; और वहां वे जैसे तैसे अपना समय पूरा करते हैं। अैसे शिक्षकों द्वारा अितना बड़ा प्रयोग करके अुससे अच्छे परिणामोंकी आशा कैसे रखी जा सकती है?

थोड़ी बहुत कठिनाअी माता-पिताकी तरफसे भी होती है। वे अिस प्रयोगका महत्त्व नहीं समझते। अुनकी आंखोंके सामने तो पुराने ढंगकी शालाअें ही होती हैं। वे कहते हैं, हम तो अपने

माता-पिताका विरोध

बच्चोंको शालामें पढ़ानेके लिअे भेजते हैं, अुद्योग सीखने और सफाअीके काम करनेके लिअे नहीं। नाट्यप्रयोग, पर्यटन वगैरा अुन्हें निरे खेल मालूम

होते हैं। अिसलिअे वे लोग शिकायत करते हैं कि आप तो बालकोंको खेलाते रहते हैं अथवा अुनसे काम कराते हैं, पढ़ाते कुछ नहीं। कामकी तो हमारे घरमें ही क्या कमी है? गांवोंके अज्ञान माता-पिता अैसा कहें तो समझमें आ सकता है। परंतु सुशिक्षित माने जानेवाले बहुतसे माता-पिता भी अुद्योगको निकम्मा मानते हैं। वे दलील देते हैं कि हमारे बच्चोंको बादमें कहां यह अुद्योग करना है जो आप अुनका समय बिगाड़ते है और अुनकी असली पढ़ाअीमें कमी करते हैं।

दूसरी बड़ी कठिनाअी देशकी गरीबीकी भी है। अधिकतर माता-पिताकी आर्थिक स्थिति अितनी तंग होती है कि बच्चोंको शालामें भेजना अुन्हें पुसाता नहीं। अुनके १०–१२ वर्षके बालक छोटे भाअी-बहनोंको संभालनेमें मांकी मदद करते हैं, ढोरोंको चराने या पानी पिलाने ले जाते हैं, बापको खेत पर खाना पहुंचाते हैं, और अिस तरहका दूसरा भी बहुतसा काम करते हैं; और वह काम माता-पिताके लिअे अितना अुपयोगी बन जाता है कि अुसे छुड़वाकर वे बालकोंको अैसी पढ़ाअीके लिअे पाठशाला भेजनेको तैयार नहीं होते, जिसकी अुन्हें कोअी अुपयोगिता नहीं दिखाअी देती। अैसे बच्चोंके नाम पाठशालाके रजिस्टरमें दर्ज किये हुअे हों, तो भी अुनकी हाजिरी बहुत कम रहती है।

अिन सब कठिनाअियोंके कारण अिस प्रयोगको अनुकूल वातावरण नहीं मिलता। अुसे पैदा करनेके लिअे सब तरफसे प्रयत्न करने पड़ेंगे।

कठिनाअियोंका हल

समाज-शिक्षण अथवा लोक-शिक्षण द्वारा माता-पिताकी गलतफहमी दूर करनी होगी। अिस नअी तालीमका महत्त्व अुन्हें समझाना होगा और अिसमें अुनकी दिलचस्पी पैदा करनी होगी। गरीबीके कारण जो कठिनाअियां आती हैं वे तो गरीबी दूर करनेके अुपाय काममें लेकर ही दूर हो सकती हैं। देहातकी गरीबीका प्रश्न हल करनेका काम मुख्यतः रचनात्मक कार्यकर्ताओंका है। अब तो अिसमें सरकारकी मदद भी मिल सकती है। दूसरी तरफ शिक्षकोंकी कुशलता और योग्यताका स्तर अूंचा अुठानेकी जरूरत है। अुन्हें भरती करनेके लिअे जो योग्यता अिस समय

निर्धारित की हुअी है अुसे बढ़ाना ही पड़ेगा। भरती करनेके बाद अुन्हें जो तालीम दी जाती है वह भी आजसे अधिक ठोस होनी चाहिये। सरकारी विज्ञप्तिमें बताये अनुसार अुद्योगके सिलसिलेमें होनेवाले चालू खर्च जितना स्वावलंबन सिद्ध करनेका सरकार द्वारा रखा गया लक्ष्य गांधीजीकी योजनामें विश्वास रखनेवालोंको भले ही कम लगता हो, परंतु यदि सारी बुनियादी मानी जानेवाली शालाअें अुस लक्ष्य तक जल्दी पहुंच जायं तो अभी तो हमें संतोष कर लेना चाहिये। अुद्योग शुरू करनेके कारण जो अधिक खर्च और बिगाड़ होता है, वह तो अेकदम रुक ही जाना चाहिये। साथ ही विज्ञप्तिमें जिन वस्त्र-स्वावलंबी मंडलोंकी बात कही गअी है अुनकी संख्या भी बढ़नी चाहिये। अैसे मंडल शालाओंके लिअे अवश्य ही शोभास्पद हैं।

जिन शालाओंका प्रबंध गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंके हाथमें है, अुनसे अवश्य ही अधिक अपेक्षा रहेगी। माता-पिताके सहयोगके अभाव और अुनकी गरीबीके कारण आनेवाली मुश्किलें अुनके काममें भी बाधक होती हैं। ये शिक्षक अधिक अुत्साह और रसपूर्वक काम करनेवाले होते हैं, अिसलिअे अुनसे आशा रखी जाती है कि अुद्योग वगैरा प्रवृत्तियोंमें वे विद्यार्थियोंकी अधिक दिलचस्पी पैदा करेंगे और कुल मिलाकर अधिक अच्छे परिणाम ला सकेंगे।

४

परंतु अितनेसे ही गांधीजीका अुद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। अुन्हें तो जनता पर करोंका भार बढ़ाये बिना शिक्षाको सार्वत्रिक बनाना था।

पाठशालाअें नहीं परंतु परिश्रमालय

अिस समय देशीराज्योंके विशाल प्रदेश भारतीय संघमें मिल गये हैं। अुनमें कअी प्रदेश अैसे हैं, जहां बालकोंके लिअे शिक्षाकी बहुत कम या नहींके बराबर व्यवस्था है। शिक्षाके विषयमें अुन्हें भारतीय संघके पुराने प्रदेशोंकी कतारमें लानेके लिअे वहां बहुतसी नअी शालाअें खोलनेकी जरूरत है। परंतु रुपयेकी कठिनाअीके कारण सरकार शीघ्र वैसा नहीं

कर सकती। रुपयेकी तंगीके कारण शिक्षाके बजटमें अिस वर्ष सरकारने कटौती कर दी है। गांधीजीकी योजनाको अमली रूप दिया जा सके, तो अैसे प्रश्न आसानीसे हल हो जायं। अिस योजनाको कार्यान्वित करनेका रास्ता हमें खोजना ही होगा। यह भार सरकारी विभाग पर डालना मुनासिब नहीं। गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंको ही योजना पर अमल करके दिखाना चाहिये और अुसके परिणाम समाज और सरकारके सामने रखने चाहिये। गुजरातमें स्कूल बोर्डकी शालाओंकी व्यवस्था अुससे मांगकर गैर-सरकारी कार्यकर्ता चार-पांच स्थानोंमें प्रयोग कर रहे हैं। अुसमें भी परीक्षाओं और पाठ्यक्रमके बंधनोंकी तथा माता-पिताके पर्याप्त सहयोगके अभावकी कठिनाअियां बाधक होती हैं। शालाका अर्थ है पढ़ना, लिखना और साक्षरी विषयोंका अध्ययन करना। ये संस्कार लोगोंके मन पर हजारों वर्षोंसे पड़े हुये हैं। लोगोंको कितना ही समझाअिये, परंतु भाषा, गणित, अितिहास, भूगोल वगैरा साक्षरी विषयोंने और अुनमें भी अुनकी अेक खास तरहकी जानकारीने जो महत्त्व प्राप्त कर लिया है, अुसके पैमानेसे ही किसी भी शालाको नापा जाता है। हम यह सोचें कि जिस गांवमें शाला हो ही नहीं वहां शाला खोलकर परीक्षा वगैराके साथ अुसका संबंध जोड़े बिना हम यह प्रयोग करें, तो वहां भी थोड़े ही दिनोंमें माता-पिता आकर कहने लगेंगे कि आप कुछ पढ़ाते नहीं हैं, आप तो बालकोंसे काम कराते हैं और अुन्हें खेलाते हैं। अिसलिअे मुझे लगता है कि यह प्रयोग करना हो तो विद्यालय अथवा शालाका नाम छोड़कर हमें काम करना पड़ेगा। विद्यालयमें अुद्योगको लानेके बजाय अुद्योगालयमें विद्याको ले जाना पड़ेगा। मुझे याद पड़ता है कि अेक बार विनोबाने अेक प्रसंग पर यह कहा था कि गांव गांव पाठशाला खोलनेके बजाय परिश्रमालय खोलना ही अधिक अच्छा है। गांवके बालक वहां यह समझ कर आयें कि वे पढ़नेके लिअे नहीं, परंतु अुद्योग करनेके लिअे आते हैं। कार्यकर्ता तो सच्चे शिक्षक ही होंगे। अुनके मनमें बालकोंकी शिक्षा और सर्वांगीण विकासकी निश्चित कल्पनायें होंगी। परंतु वे अपने कार्यका आरंभ अुद्योग-शिक्षणसे और बालकोंमें व्यवस्थितता और स्वच्छताकी आदतें डाल कर करेंगे।

अैसा प्रयोग करनेवाले कार्यकर्ता अथवा शिक्षकको अपनी तालीम और तैयारी वहुत पक्की होनी चाहिये। हमारे गांवोंमें सवसे वड़ा काम वहांकी गरीवी और गंदगी दूर करना है। आप दूसरी कितनी ही वातें करें, परंतु जव तक लोगोंको अुनकी गरीवी मिटानेका प्रत्यक्ष और प्रयोगसिद्ध अुपाय नहीं वतायेंगे, तव तक लोग आपकी वात नहीं सुनेंगे और आप गांवोंकी कोअी ठोस सेवा नहीं कर सकेंगे। अिसके लिअे गांधीजीने खादीका काम वताया है। परंतु खादीका अुद्योग अेक सहायक अुद्योग है। वह फुरसतके समयका अुपयोग करके मनुष्यकी मुख्य आयमें थोड़ी-वहुत वृद्धि कर देनेवाला अुद्योग है। अिस दृष्टिसे अुसका महत्त्व कम नहीं है, परंतु अकेले अुसीसे हमारे गांवोंकी गरीवी दूर नहीं हो सकेगी।

कार्यकर्ताकी योग्यता

हमारे गांवोंके मुख्य अुद्योग खेती और गोपालन हैं। अुन पर ध्यान दिये विना अव काम चल ही नहीं सकता। आज हम अैसी स्थितिमें पहुंच गये हैं कि अिन दोनों धंधोंमें अुत्पादन वढ़ाये विना हम जी नहीं सकते। नहरों द्वारा अधिक विस्तारमें पानी पहुंचाने और पड़ती जमीनको खेतीके काममें लानेकी योजना पर सरकारकी तरफसे अमल हो रहा है। परंतु अिसके साथ गांवकी मौजूदा खेतीका अुत्पादन भी वढ़ाना जरूरी है। अुसमें अेक वड़ी रुकावट यह है कि जो खेतीके काममें कोअी भाग नहीं लेते या कोअी मदद नहीं देते, अैसे गैर-काश्तकार जमीन-मालिकोंका भार खेती पर पड़ता है। यह भार कुछ हद तक घटानेके लिअे सरकारने कानून वनाये हैं। परंतु कानूनोंसे पूरा लाभ अुठानेके लिअे किसानोंमें जो साहस और योग्यता चाहिये वह अुनमें पैदा करनेकी जरूरत है। यह काम कार्यकर्ताओंके स्थायी साथ और मददके विना किसान नहीं कर सकेंगे। अैसे कार्यकर्ताओंको खेती-कामके सच्चे जानकार वनना पड़ेगा। तभी वे किसानोंकी सच्ची मदद कर सकेंगे। जो शिक्षक अथवा शिक्षकगण अुपरोक्त परिश्रमालयकी योजना लेकर गांवमें वैठेंगे, अुनका पहला काम तो गांवकी गरीवीका प्रश्न हल करनेमें गांववालोंके सहायक वनना होगा।

खेती और गोपालन

अुन्हें खेती और गोधन-सुधारका व्यावहारिक ज्ञान होगा तो ही वे अिसमें सहायक बन सकेंगे। 'व्यावहारिक' शब्द मैंने जान-बूझकर काममें लिया है। क्योंकि कृषि-विज्ञानके ग्रेज्युअेटको हम गांवकी खेती दिखायें, तो वह तुरंत कह देगा कि यहां पानीकी सुविधा नहीं है, किसानोंके पास अच्छे साधन नहीं हैं, जमीन सुधारनेको अुनके पास पूंजी नहीं है, अिसलिये कुछ नहीं हो सकता। वह भला होगा तो सरकार नये कुअें खुदवानेके लिअे जो मदद देती है अथवा खाद बनानेके लिअे खड्डे खोदनेका जो प्रोत्साहन देती है, अुसके बारेमें लोगोंको समझायेगा। हमें तो किसानको यह बताना है कि अुसे बाहरकी मदद न मिले तो भी अपने विशेष परिश्रमसे, विशेष सावधानीसे और आपसमें सहयोग साधकर वह अपनी आजकी स्थितिसे निकलकर अेक कदम आगे कैसे बढ़ सकता है, अेकके बजाय दो पौधे कैसे अुगा सकता है। कोअी आलोचना करेगा कि आप तो शिक्षकको बहुत बड़ा काम बता रहे हैं, अुससे आप अत्यधिक अथवा न रखने लायक आशा रखते हैं। परन्तु अिस समय मैं साधारण शिक्षककी बात नहीं कह रहा हूं। सामने जो घना अंधेरा दिखाअी दे रहा है अुसमें दीपक बनकर दूसरोंके लिअे पथ प्रकाशित करनेवाले अथवा जंगलकी झाड़ियां काटकर दूसरोंके लिअे रास्ता बनानेवाले वीर और साहसी शिक्षककी बात कह रहा हूं। अैसे शिक्षकको सारे गांवको अपनी शाला बनाना होगा। तभी वह अपने परिश्रमालय अथवा ग्रामशालाके लिअे लोगोंमें दिलचस्पी पैदा कर सकेगा।

गांवकी खेती और गांवका गोधन सुधारनेकी दृष्टिसे वह खेती और गोपालन दोनोंकी सहकारी समितियां बनाकर संयुक्त खेती और संयुक्त गोपालनकी योजना बनायेगा। अपने परिश्रमालयको भी वह सहकारी समितिका सदस्य बनायेगा। परिश्रमालयके विद्यार्थी भी खेतोंमें मजदूरी करने और ढोर चराने जायंगे। शिक्षक स्वयं भी मजदूरी करते-करते लोगोंका पथप्रदर्शन करेगा।

यदि दो शिक्षक अिस प्रयोगके लिअे गांवमें गये हों, और दो जनोंका जाना ही ठीक है, तो यह जरूरी है कि दोनोंको खेती और गोपालनके सिवा वस्त्रविद्या और बढ़अीगिरीमें से

पहले कदम

अेक अेक अुद्योग आता हो। साथ ही आठ वर्षके

पाठ्यक्रमवाली वुनियादी शाला चलानेके लिअे साक्षरी विषयोंका जितना ज्ञान आवश्यक माना जाय अुतना तो कम-से-कम अुन्हें होना ही चाहिये। अुनकी दृष्टि वैज्ञानिक होनी चाहिये। वे परिश्रमालयमें विद्यार्थी बढ़ानेकी अुतावली न करें। प्रारंभ वे अेक अेक विद्यार्थीसे ही करें तो सुविधाजनक होगा। ये विद्यार्थी स्वतंत्र रूपमें अुद्योगकी कुछ खास क्रियाअें करने लग जायं, तब दूसरे विद्यार्थी भरती किये जायं। कोअी छह महीनेमें तो शुरूमें आये हुअे विद्यार्थियोंसे अुद्योगकी कुछ विशेष क्रियाअें सिखानेके लिअे सहायकके रूपमें भी काम लिया जा सकेगा।

अुद्योग सिखाते-सिखाते ही अुसके स्वाभाविक अनुवंधमें आनेवाली वैज्ञानिक, यांत्रिक और सामाजिक विषयोंकी जानकारी वे जबानी ही विद्यार्थीकी योग्यतानुसार देते रहें। फिर छह महीने या वारह महीनेके बाद वे अक्षर-ज्ञान देना आरंभ करें। अुनके पास किस अुम्रके वालक आते हैं, यह देखकर अुन्हें अपने कामका समय-पत्रक वनाना होगा। संभव है वालवाड़ी, वुनियादी शिक्षा और प्रौढ़-शिक्षा तीनों काम अुन्हें शुरू करने पड़ें। दो शिक्षक कितना काम संभाल सकते हैं और गांवमें से कितने सहायक तैयार कर सकते हैं, अिस पर कामकी व्यवस्थाका आधार रहेगा। जिस कामकी व्यवस्था स्थानीय परिस्थितिके अनुसार अनुभवके आधार पर करनी है, अुसके अधिक व्योरेमें हम नहीं जा सकते।

अिस प्रयोगके आर्थिक पहलूका थोड़ासा विचार कर लेना चाहिये। जिस समय हमारे गांव अितनी गरीव हालतमें हैं कि जिन शिक्षकोंको

शिक्षकोंकी आजीविका

अपनी आजीविकाका पांच-सात वर्षका प्रबंध करके ही गांवोंमें जाना पड़ेगा। अितने समयमें अुन्हें गांव-वालोंको अपनी अुपयोगिता अिस हद तक सिद्ध कर दिखानी चाहिये और गांवकी आर्थिक स्थिति सुधारनेमें अितना हिस्सा ले चुकना चाहिये कि गांववाले अुनके निर्वाहका भार खुशीसे अुठा लें। गांववाले यह भार न अुठा सकें तो अपने शरीर-श्रमसे अपना निर्वाह कर लेनेकी शक्ति तो अुनमें होनी ही चाहिये। अितने अर्सेमें अुनका परिश्रमालय अथवा ग्रामशाला अितनी अच्छी तरह चलने लग गअी होगी कि अुसके अुत्पादनसे शिक्षकोंके निर्वाह जितना

पैसा मिल जाय। परिश्रमालयके लिअे छप्पर तथा शिक्षकोंके रहनेकी झोंपड़ियां गांवमें मिल जायं तो अुत्तम बात होगी। अुनका किराया देना पड़े तो भी चिन्ता नहीं। वर्ना अुन्हें बनानेके लिअे गांववालोंकी मेहनत और बाहरसे कुछ नकद रकम जुटानी पड़ेगी। अिन मकानों पर गांवका ही सार्वजनिक स्वामित्व माना जायगा। थोड़ेसे बढ़अीके औजार और बुनाअीके लिअे अेक दो करघे शुरूमें बाहरसे लाने पड़ेंगे, फिर तो आवश्यक साधन धीरे धीरे गांवमें ही बना लेने चाहिये।

परिश्रमालयमें सीखने आनेवाले जो कुछ अुत्पादन करें अुसका कुछ भाग अुन्हें देना होगा। कुछ भाग व्यवस्थाके लिअे सुरक्षित रखा जाय।

विद्यार्थियोंका मेहनताना

कितना भाग दिया जाय, यह स्थानीय परिस्थितियां देखकर तय कर लिया जाय। सीखने आनेवालोंको अमुक भाग देनेकी बात मैं अिसलिअे कह रहा हूं कि लोगोंकी गरीबी अितनी बढ़ी हुअी है कि मजदूरीके बदलेमें अुन्हें अुचित रकम मिले तो ही अुनमें काम करनेका अुत्साह रह सकता है। चौदह वर्षके बालकोंको घरका खिला कर शालामें पढ़नेके लिअे भेजने जैसी आर्थिक स्थिति जिन माता-पिताकी नहीं हो, अुनके बच्चोंको अुन्होंने जो कुछ अुत्पादन किया हो वह दे देना ही ठीक मालूम होता है।

नअी तालीमके पूरे प्रयोगका प्रारंभ किस ढंगसे किया जा सकता है, अुसकी थोड़ीसी कल्पनाके रूपमें मैंने यह कहा है। यद्यपि यह कल्पना है, फिर भी हमारे गरीब गांवोंकी स्थिति और हमारी वर्तमान बुनियादी शालाओंके निरीक्षण पर अुसका आधार है। अिस प्रकारके प्रयोग तीन-चार गांवोंमें करनेके लिअे पूरी योग्यतावाले साहसी वीर निकल आयें, तो हम अुनके पांच-सात वर्षके अनुभवसे गांधीजीकी योजनाके अनुसार शिक्षाका श्रीगणेश करनेकी स्थितिमें आ सकेंगे। और वह श्रीगणेश कर सकें तो अुसके आगेके कामके लिअे मौजूदा बुनियादी शालाओंके प्रयोग अुपयोगी सिद्ध होंगे। वे अपनी शक्ति और परिस्थितिके अनुसार कुछ न कुछ तो करती ही हैं। अैसे मौलिक प्रयोगोंसे अिन शालाओंको बहुत प्रेरणा और

जानकारी मिल सकती है। अैसे मौलिक प्रयोगोंसे ही अनुबंधवाले शिक्षणकी सच्ची कला हाथ लगेगी। बुनियादी शालाओंका पाठ्यक्रम कैसा हो, अिसकी कल्पना भी अैसे प्रयोगोंसे मिल सकती है, यद्यपि गांधीजीकी शिक्षण-योजनामें तमाम शालाओंके लिअे अेकसा पाठ्यक्रम बनाना ठीक नहीं। स्थानीय परिस्थितिके अनुसार पाठ्यक्रममें फेरबदलके लिअे गुंजािअश होनी ही चाहिये। परंतु योजनाको तंत्रबद्ध करनेकी जिम्मेदारी जिस पर है, अुसका काम तो निश्चित पाठ्यक्रमके बिना चलेगा नहीं। अिस हद तक योजनाके प्राण अवरुद्ध भी जरूर होंगे। अिस प्रकार अिस योजनाको सदा जीती-जागती रखनेके लिअे और तंत्रबद्ध पद्धतिसे काम करनेवालोंको प्रेरणा मिलती रहे अिसके लिअे स्वतंत्र ढंग पर काम करनेवाले प्रयोग-वीरोंकी जरूरत हमेशा रहेगी।

२० मअी, १९५०

२

अितिहासकी शिक्षा — कुछ सुझाव

सन् १९३७ में गांधीजीने बुनियादी शिक्षाकी योजना मित्रोंके सामने रखी, अुसके बाद अुसका पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिअे अेक कमेटी नियुक्त की। वह जाकिरहुसेन कमेटीके नामसे प्रसिद्ध है। श्री किशोरलालभाअी अुसके अेक सदस्य थे। अुस कमेटीके दिये हुअे पाठ्यक्रममें अितिहासका भी पाठ्यक्रम दिया गया है। अुसके साथ श्री किशोरलालभाअीका मतभेद था। जाकिरहुसेन कमेटीके पाठ्यक्रममें ठेठ प्राचीन कालसे शुरू करके क्रमशः अर्वाचीन कालके अितिहास पर आना होता है। अुसमें पहली कक्षामें अर्थात् सात वर्षकी अुम्रके बालकोंको ठेठ प्रारंभिक दशामें जीवन बितानेवाले आदि-मनुष्य किस तरह शिकार करके अथवा जमीनके भीतरसे कंदमूल खोदकर अपना भोजन प्राप्त करते थे, पेड़ों पर या गुफाओंमें रहते थे तथा पेड़ोंकी छाल, पत्ते और चमड़ोंका अुपयोग शरीर ढंकनेके लिअे करते थे, और अुसमें से किस तरह वे खुराकके लिअे

पशुपालन तथा सादी खेती पर आये, रहनेके साधनोंमें अुन्होंने कुछ सुधार किये और कपड़ोंके लिअे अून, कपास और रेशमका अुपयोग करने लगे — वगैरा बातें कहनी होती हैं। अिसी प्रकार वे लकड़ी, पत्थर, कांसे और लोहेके हथियार और औजार क्रमशः काममें लेने लगे; घोड़े, गाय, कुत्ते वगैरा पालकर अुनका अुपयोग करने लगे; अपनी आवश्यकताअें, भावनाअें तथा विचार प्रगट करनेके लिअे भाषाका प्रयोग करने लगे, चित्र बनाने लगे और अुन्होंने लिखना भी शुरू किया — यह सब कहानीके रूपमें और नाटकके रूपमें अैसी प्रवृत्तियां करवाकर सिखाना होता है। अिसके बादके काफी प्राचीन कालके मनुष्यका जीवन कैसा था, यह भी कहानियों द्वारा कहना होता है। अुसमें मिस्र देशमें गुलामोंसे मजदूरी कराकर पिरामिड बनवाये गये, मोहन-जो-दड़ोमें बालक क्या क्या करते होंगे, वेदोंकी शुनःशेपकी कहानी, वगैरा बातें कहना, चीनके पहले पांच बादशाहोंकी कहानी कहना अथवा अुसका अभिनय कराना होता है। साथ ही अति प्राचीन कालके प्रारंभिक दशाके मनुष्यों जैसा जीवन बितानेवाले जो लोग आज भी पृथ्वी पर कहीं कहीं हैं — जैसे अरबस्तानके बद्दू लोग और अुत्तरी ध्रुवके पासके प्रदेशके अेस्किमो लोग — अुनकी बातें भी कहना और अुनका अभिनय कराना होता है। शिक्षक बहुश्रुत और कलावाला हो तो अिसमें बालकोंका रस पैदा कर सकता है और आनन्द भी अुत्पन्न कर सकता है तथा आजकलके साधन-संपन्न जीवनके बजाय अैसा कम साधनोंवाला जीवन भी मनुष्यका किसी समय था, अिसके थोड़े-बहुत संस्कार बालकके दिमाग पर शायद डाल सकता है। अलबत्ता, अिसमें बालकोंकी तर्कशक्ति और कल्पना-शक्ति पर जरूरतसे ज्यादा जोर पड़नेका डर भी है।

हकीकत तो यह है कि हमारे आजकलके थोड़ी ज्ञान-पूंजीवाले शिक्षकोंके लिअे ही यह पाठ्यक्रम बड़ा कठिन पड़ता है। चीज भले ही कठिन न हो, परंतु अुसे पायें कहांसे? प्रान्तीय भाषाओंमें अैसी जानकारी देनेवाली जैसी चाहिये वैसी पुस्तकें नहीं हैं। अिस पाठ्यक्रमके अनुसार प्रान्तीय भाषाओंमें पाठ्यपुस्तकें तैयार की जा सकती हैं। परंतु अिससे हमारा दारिद्र्य नहीं मिटेगा। शिक्षकके पास अिस पाठ्यक्रमके आसपासकी

बहुतसी जानकारी हो, तो ही वह अिन अैतिहासिक कहानियोंको आकर्षक और प्रभावकारी बना सकता है। अंग्रेजीमें अैसी जानकारी देनेवाली अनेक पुस्तकें होनेके कारण अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त पाठ्यक्रम तैयार करनेवालोंको जो चीज आसान लगती है, अुसका प्रान्तीय भाषाके पूरे साहित्यसे भी अच्छी तरह परिचित न रहनेवाले हमारे शिक्षकोंको बहुत कठिन प्रतीत होना स्वाभाविक है।

श्री किशोरलालभाअीका मत यह है कि अितिहासकी शिक्षा निकटके कालसे शुरू होनी चाहिये और धीरे धीरे प्राचीन काल पर पहुंचनी चाहिये। प्राचीन अितिहासका अध्ययन अूपरकी कक्षाओंमें हो। अिसी प्रकार शालाके समीपवर्ती प्रदेशका अितिहास पहले पढ़ाना चाहिये और क्रमशः अुसके क्षेत्रका विस्तार करते जाना चाहिये। मुझे यह दूसरी वस्तु अधिक महत्त्वकी लगती है। क्योंकि शहरके बालक जिन वस्तुओं और घटनाओंमें रस ले सकते हैं और अुन्हें आसानीसे समझ सकते हैं, अुनमें गांवके बालक रस नहीं ले सकते। न अुन्हें आसानीसे समझ सकते हैं। गांवके बालकोंका रस बिलकुल दूसरी बातों और घटनाओंमें होगा और अुन्हींको वे आसानीसे समझ भी सकते हैं। अिसी प्रकार जंगलके पासके प्रदेशके, पहाड़के पासके प्रदेशके और समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशके अर्थात् भिन्न भिन्न प्रदेशोंके बालकोंकी दिलचस्पी और समझके विषय अलग अलग होंगे। अधिक परिचितसे कम परिचित और अुससे अपरिचितकी ओर — अिस क्रमसे आगे बढ़नेका सिद्धान्त हम स्वीकार करते हों, तो भिन्न भिन्न प्रदेशोंके बालकोंके लिअे अितिहास और भूगोलका क्रम हमें भिन्न भिन्न रखना चाहिये। अिसलिअे अेक ही प्रकारकी पाठ्यपुस्तकोंसे सब जगह काम नहीं चलेगा। हालमें ही श्री विनोबाने सेवाग्राममें अेक भाषण दिया, जिसमें यह विचार प्रगट किया है कि नअी तालीमको नित्य नअी तालीम रहना पड़ेगा। अुन्होंने यह भी कहा कि भिन्न भिन्न प्रदेशोंके लिअे भिन्न भिन्न पाठ्यपुस्तकें होनी चाहिये।

> “प्रत्येक गांवकी परिस्थिति अलग-अलग होती है। अुसीके अनुसार शिक्षाका विचार करना पड़ेगा। जहां नदीतट होगा वहां अेक प्रकारकी, जहां पहाड़ होगा वहां दूसरे प्रकारकी, और जहां

आसपास जंगल होगा वहां तीसरे प्रकारकी शिक्षा होगी। प्रत्येक गांवका वातावरण देखकर अुसकी रचना करनी होगी। अिसके लिअे खास अेक ही तरहकी योजना अथवा निश्चित पुस्तकें काम नहीं देंगी। आजकल सब प्रान्तोंके लिअे अेक ही प्रकारकी पुस्तकें सारी शालाओंमें चलती हैं। अिससे गांवकी जो विशेषता और भिन्नता होती है अुसकी कोअी कल्पना नहीं आती, अेक सर्वसामान्य पुस्तकमें बालकोंको रस नहीं मिलता और अलग अलग प्रकारके गांवोंके लिअे वह कामकी नहीं रहती।

"हमारी पाठशालाओंके लिअे पुस्तकोंकी जरूरत रहेगी, परंतु वे अलग अलग गांवोंकी स्थितिको ध्यानमें रखकर अलग अलग ढंग पर लिखी हुअी होंगी। जो अितिहास सेवाग्रामकी शालामें पढ़ाना होगा अुसमें सेवाग्रामकी सब संस्थाओंका अितिहास होगा, अुसमें यह भी होगा कि सेवाग्राम गांव कैसे बना, अुसमें गांवके वृद्ध जनोंका अनुभव होगा और अिस प्रकार वह सजीव अितिहास होगा। भूगोलमें भी सेवाग्राम और अुसके आसपासकी स्थितिका विशेष वर्णन होगा। जिस गांवमें हम रहते होंगे अुसे दुनियाका मध्यबिन्दु मानकर अुसके आसपास दुनिया मौजूद है, यह समझकर भूगोलकी शिक्षा दी जायगी।"

अिस पुस्तकमें श्री किशोरलालभाअीकी 'जड़मूलसे क्रान्ति' नामक पुस्तकसे अुनका 'अितिहासका ज्ञान' नामक लेख लिया गया है। अुसमें अुन्होंने अेक दूसरी ही और बड़े महत्त्वकी वस्तु पर जोर दिया है। अुन्होंने कहा है कि अितिहासके ज्ञान और शिक्षणको आजकल बहुत महत्त्व दिया जाता है, परंतु वह अितने महत्त्वका पात्र नहीं है। क्योंकि किसी भी घटनाका सोलह आने सच्चा अितिहास हमें शायद ही मिल पाता है। स्वयं अपनी की हुअी या कही हुअी बातोंकी भी मनुष्यकी स्मृति अितनी जल्दी मन्द पड़ जाती है कि थोड़े समय बाद अुसमें सत्य और कल्पनाका मिश्रण हो जाता है। साथ ही, अितिहास पढ़कर हम भूतकालके बारेमें जो कल्पनायें करते हैं वे अुचितसे बहुत अधिक व्यापक होती हैं। लोक-जीवनके वर्णनके रूपमें जो जानकारी दी हुअी होती है, वह अधिकांशमें

लोगोंके बहुत थोड़े भागके जीवनकी जानकारी होती है। फिर भी हम अुसे समस्त जनसमाजकी स्थितिके रूपमें समझते हैं। किसी राजा अथवा राजधानीके शहरकी समृद्धिके वर्णन परसे पाठकोंके मन पर अैसा असर पड़ जाता है मानो सारा देश समृद्ध होगा। नालंदा जैसे विद्यापीठों अथवा गुरुकुलोंके वर्णन पढ़कर अैसी छाप मन पर पड़ती है कि सारे देशमें विद्याका खूब प्रचार होगा और देशके सभी बालक अिन विद्यापीठों और गुरुकुलोंमें पढ़ने जाते होंगे। गार्गी जैसी विदुषीके वर्णन परसे यह छाप मन पर पड़ती है कि प्राचीन कालमें सभी स्त्रियां खूब पढ़ी-लिखी होंगी। किन्तु यह मानना वैसा ही होगा, जैसा आजकल सरोजिनी नायडू अथवा विजयालक्ष्मी पंडितका वर्णन पढ़कर यह मान लिया जाय कि भारतमें सभी नहीं तो बहुत बड़े भागकी स्त्रियां अैसी ही विद्वान और आगे बढ़ी हुअी होंगी। अिसलिअे अितिहास पढ़कर न केवल व्यापक अनुमान ही नहीं लगाने चाहिये, बल्कि तुरन्त यह भी नहीं मान लेना चाहिये कि अितिहासमें आनेवाली सभी घटनाअें ठीक अुसी तरह हुअी होंगी।

आश्रमकी पाठशाला और गुजरात विद्यापीठ दोनोंमें अितिहास पढ़ानेका काम मैंने कअी बार किया है। अुस अनुभवसे मैं तो अिस परिणाम पर पहुंचा हूं कि जब तक विद्यार्थी बड़ी अुम्रका न हो जाय तब तक अुसे व्यवस्थित अितहासकी शिक्षा देना व्यर्थ है। आजका हमारा जीवन — हमारे आदर्श, हमारी आकांक्षाअें, हमारी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाअें सब — आज तकके हमारे अितिहासका परिणाम हैं। यह समझनेके लिअे पहले तो हमें आजके जीवनका अच्छी तरह निरीक्षण करना चाहिये। बादमें अुसके कारणोंकी जांच करनी चाहिये। अपने देशका विचार करें तो हमारी वर्तमान स्थिति हमारे पूर्वजोंके अच्छे कार्यों और भूलोंका तथा विदेशोंकी जिन जिन प्रजाओंसे हमारे देशका संबंध हुआ अुसका परिणाम है। अिस प्रकार हमारी वर्तमान स्थितिका भूतकालकी अनेक घटनाओंके साथ कार्य-कारण-संबंध है। यह सब समझानेका अितिहासका दावा है। परंतु जैसा श्री किशोरलालभाअी कहते हैं, हमें अुपलब्ध अितिहास ही यदि दोषपूर्ण अथवा भूलभरा हो, तो अुससे न केवल हमारी वर्तमान स्थितिका सही स्पष्टीकरण नहीं मिलेगा, प्रत्युत

वह हमें गलत रास्ते पर भी ले जायगा। यह सब समझना प्राथमिक या माध्यमिक शालाके विद्यार्थीकी शक्तिसे बाहर माना जायगा। जिसे सामाजिक परिस्थितिका और समाजके प्रश्नोंका कुछ न कुछ खयाल हो, वही अितिहासको अच्छी तरह समझ सकता है और अुससे लाभ अुठा सकता है। मैं मानता हूं कि अिस समय प्राथमिक और माध्यमिक शालाओंमें जिस प्रकारका और जिस ढंगसे अितिहास पढ़ाया जाता है, अुससे विद्यार्थीको कोअी लाभ नहीं होता, बल्कि नुकसान ही होता है। मेरी राय यह है कि अितिहास पढ़ाना हो तो भी कॉलिजों अथवा अुत्तर-बुनियादी शालाओंमें ही पढ़ाना चाहिये। और, वह अितिहास भी अच्छी तरह परिमार्जन करके नअी दृष्टिसे लिखा जाना चाहिये।

यह नअी दृष्टि कैसी हो? पहले तो हमें यह वस्तु मानकर चलना होगा कि भूतकालमें हुअी सभी बातें याद रखने लायक या अितिहासमें दर्ज करके रखने जैसी नहीं होतीं। कुछ बातें तो खास तौर पर भूल जाने योग्य होती हैं। अैसी भूल जाने लायक वस्तुओंको हम अितिहासकी पुस्तकोंमें दर्ज करते रहेंगे, तो हम मनुष्य मनुष्यके बीच ओर्ष्या-द्वेष और वैरभावको जीवित रखेंगे और अुसे पोषण देंगे। अुदाहरणके लिअे, हिन्दुओंका मुसलमानोंके साथ आठ सौसे भी अधिक वर्षोंका संबंध रहा है। अुसमें हिन्दू-मुसलमानोंमें कअी बार लड़ाअियां हुअी हैं, और दोनों जातियोंने अेक-दूसरेके साथ मेल भी साधा है। जिस हद तक मेल साधा है, अुस हद तक दोनोंको लाभ हुआ है। मनुष्य मनुष्यके बीच भ्रातृप्रेम और समानताकी अिस्लामी भावनाने हिन्दुओंकी अधिकार-भेद और अूंच-नीचकी भावना पर बनी हुअी समाज-रचनाको सुधारनेमें कम असर नहीं डाला। जब भारतमें राज्यसत्ता मुसलमानोंके हाथोंमें थी, तब पंद्रहवींसे अठारहवीं सदीके बीच हिन्दुओंमें जो अनेक साधु-सन्त हो गये, अुन पर अिस्लामी अेकेश्वरवाद और भ्रातृभावका बहुत असर पड़ा होना चाहिये। अिसी प्रकार मुसलमान औलियों और सूफीपंथके मस्त फकीरों पर वेदान्त और अुपनिषदोंके सिद्धान्तोंका प्रभाव भी कम नहीं पड़ा। अिस प्रकार दोनोंके अुत्तम तत्त्वोंके सुमेलसे नअी भारतीय अथवा हिन्दुस्तानी संस्कृति निर्माण हुअी है। भारतकी भाषाअें, लोगोंके रीति-रिवाज वगैरा अिसी

सुमेलके परिणाम हैं। यह सब किस प्रकार हुआ, जिसे हिन्दू सन्तों तथा मुसलमान औलियोंके जीवनका और दोनों जातियोंकी आम जनता पर पड़नेवाले अुनके असरका वर्णन करके समझानेका काम मैं अितिहासका मानता हूं। अुत्तर भारतका अितिहास जैसे मुसलमानोंके साथ हुअे संसर्गसे रंगा गया, वैसे दक्षिण भारतके अितिहासमें ओसाअियोंके संसर्गका असर भी काफी पाया जाता है। अितिहासमें यह सब देखने और समझनेके बजाय राजाओंके अितिहास परसे — अुन्होंने अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं तथा स्वार्थोंको पूरा करनेके लिअे देशकी भिन्न भिन्न जातियोंको अेक-दूसरेसे लड़ाया हो, कभी अेक जातिको तो कभी दूसरीको अपने पक्षमें लेकर अुस पर मेहरबानी दिखाअी हो अथवा अुस पर नाराजी जाहिर की हो और अुससे अलग अलग जातियोंमें ओर्ष्या-द्वेषके बीज बोनेका प्रयत्न किया हो अुस परसे — यह अनुमान लगाकर कि दोनों जातियां अेक-दूसरेके साथ द्वेष करती अथवा लड़ती रही हैं हम अुसे अितिहासमें दर्ज करें, तो यह बालकोंको ओर्ष्या-द्वेषका अितिहास पढ़ाने और अिस प्रकार ओर्ष्या-द्वेषको जिन्दा रखनेका ही काम होगा। आज मुसलमानोंके संबंधमें हिन्दुओंके मनमें और हिन्दुओंके संबंधमें मुसलमानोंके मनमें जो द्वेष और अविश्वास अथवा अरुचिकी भावना है, वह अिस बातका परिणाम है कि दोनों जातियोंके बीच हुअी लड़ाअियोंकी घटनाओंको हम विस्मृतिके गर्तमें नहीं दफना सके, कुछ याद रखने जैसी हकीकतोंको अच्छी तरह दर्ज करके नहीं रख सके, कुछ तथ्योंका विकृत रूपमें अुल्लेख किया गया है और कुछ घटनाअें जो कभी घटी ही नहीं सच्ची अैतिहासिक घटनाओंके रूपमें अितिहासमें प्रचार पा गअी हैं। यों तो अितिहास-शोधक कहते हैं कि बौद्धों और ब्राह्मणोंके बीच तथा गुजरातमें जैनों और ब्राह्मणोंके बीच कम लड़ाअियां नहीं हुअीं। परंतु साधारण अितिहासोंमें यह चीज नहीं आती, अिसलिअे जनताको अिस विषयका कोअी खयाल नहीं है और अिसलिअे अिन धर्म-संप्रदायोंके लोगोंके बीच आज कोअी ओर्ष्या-द्वेष नहीं है। अैसा ही हिन्दू-मुसलमानों और ओसाअियोंके संबंधमें करनेकी जरूरत है। पाकिस्तान अलग हो गया है, फिर भी हिन्दुओं और मुसलमानोंको पाकिस्तान और भारत दोनोंमें अिकट्ठे रहे बिना कोअी चारा नहीं है।

अेक देशके भीतर रहनेवाली अलग अलग जातियोंके बारेमें जैसा विचार करना चाहिये, वैसा ही विचार अलग अलग देशोंके बारेमें भी करना चाहिये। अेक देशकी दूसरे देशके साथ लड़ाअी होनेकी घटनाअें अितिहासमें दर्ज करके रखी जाती हैं। परंतु अेक-दूसरेके बीचके जीवन-व्यवहारकी अनेक शान्तिपूर्ण घटनाअें अुत्पात मचानेवाली न होनेके कारण दर्ज नहीं की जातीं। अिसलिअे बालकोंके मन पर यह असर पड़ता है कि विदेशियोंको तो शत्रु जैसे मानकर अुनसे हमेशा होशियार ही रहना चाहिये। अिससे बालकोंके दिलमें गलत देशाभिमान अुत्पन्न होता है, जिसके कारण अैसी भावनाको पोषण मिलता है कि अपने देशकी बात अुचित हो या अनुचित, परंतु हमें तो अपने देशका ही पक्ष लेना चाहिये।

अितिहास-लेखकको भूतकालकी बातें दर्ज करनेमें बड़े विवेकसे काम लेना चाहिये। अुसे अेक भी असत्य बातका कभी प्रचार नहीं करना चाहिये। तथ्योंको विकृत रूप देना असत्य जैसा ही अथवा अुससे भी बुरा है। परंतु सच्ची घटनाओंको, जिनकी तहमें मनुष्यकी मूर्खता अथवा रागद्वेष हो, भुला दिया जाना चाहिये। अीर्ष्या-द्वेष पीढ़ी दर पीढ़ी बना न रहे परंतु भुला दिया जाय और मानव-कुलकी भिन्न भिन्न शाखाअें अेक-दूसरेके नजदीक आयें और आपसमें मिलजुल कर रहें, अैसा वातावरण पैदा करनेमें अितिहासकार काफी हाथ बंटा सकता है।

मैंने अूपर कहा है कि अितिहासकी शिक्षा अैसे विद्यार्थियोंको दी जा सकती है, जिनके विचार और अुम्र कुछ पक गये हैं और जो सामाजिक घटनाओंकी तहमें रहनेवाले कार्य-कारण-संबंधको समझ सकते हैं। तो फिर क्या बुनियादी शालाओंमें अितिहासके लिअे स्थान हो सकता है? मेरे खयालसे अुनमें कालानुक्रममें गूंथा हुआ सारा अितिहास पढ़ानेकी जरूरत नहीं। कालानुक्रमका थोड़ा-बहुत खयाल भी बड़ी अुम्रमें ही हो सकता है। अिसलिअे बुनियादी शालाओंमें तो बच्चोंको दिलचस्प लगनेवाले अैतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओंकी बातें ही कही जा सकती हैं। जनकल्याणके लिअे, स्वाभिमान तथा शीलकी रक्षाके लिअे, अन्तःकरणके विश्वासके लिअे अथवा अैसे ही किसी अूंचे हेतुके लिअे कुर्बानी करनेवाले तथा कष्ट सहन करनेवाले व्यक्तियों, संतजनों, धर्मवीरों, साहसी प्रवास-

वीरों, वैज्ञानिक शोधकों, विद्याके अुपासकों और लोकनेताओं आदिकी बात अिसमें आ सकती हैं। अिनमें अच्छे राजाओंकी बातें भी शामिल की जा सकती हैं। व्यक्तियों तथा समूहके सत्याग्रहकी घटनाओंको स्थान दिया जा सकता है। ये बातें कक्षावार चढ़ते क्रमसे रखी जानी चाहिये। अिससे पूरे अितिहासका ज्ञान तो नहीं मिलेगा, मगर अितिहासके विषयका कुछ परिचय हो जायगा। समाजको किस मार्ग पर ले जाना है, अिसका खयाल शिक्षकके मनमें सदा ही होना चाहिये और अैसी बातोंके द्वारा अुस दिशामें जानेकी वृत्तिको पोषण मिलना चाहिये।

२२ मअी, १९५०

शिक्षाका विकास

पहला भाग

सावरमती

१
शिक्षाके लक्षण

१

जीवामियां नामक अेक मुसलमान किसान है। पहले वह तेलीका धन्धा करता था, परंतु कुछ वर्षोंसे खेती कर रहा है। मामूली लिखना-पढ़ना जानता है। खेतीके कामसे फुरसत मिलती है तब वह बढ़ओीका काम करता है; बढ़ओीके रूपमें वह साप्ताहिक बाजारमें बिक सकनेवाला सामान — खाटें, पेटियां, चलनियां वगैरा बनाता है; साथ ही वह कलअी करने और झालनेका काम तथा सादा लुहारी काम भी जानता है। खाट भरनेकी सन वगैराकी डोरी वह अपने-आप बुन लेता है।

अुसके अक्षर अच्छे नहीं हैं, (परंतु सुलेखनकी परीक्षामें कितने अध्यापक पास होंगे, यह शंकास्पद ही है) फिर भी वे पढ़े जा सकते है। वह अितना व्यवहार-कुशल है कि अुसे कोअी आसानीसे धोखा नहीं दे सकता। गांवका मुखिया या बाजारका दुकानदार अुसके 'भोलेपनका लाभ' नहीं अुठा सकता।

मैंने अुसे हमेशा अुत्साहपूर्ण और आत्म-विश्वासी देखा है। दो-अढ़ाअी महीनेसे वह नअी जमीन लेनेके लिअे अेक आदमीसे बातचीत किया करता था। परन्तु बातका निपटारा न होनेसे घर बैठा था। फिर भी अुसके मुख पर चिन्ता नहीं थी, क्योंकि वह घड़ीभर भी निकम्मा नहीं बैठता था। वह अपने बढ़ओीके और दूसरे फुटकर कामोंसे गुजरके लायक कमा लेनेका विश्वास रखता था।

वह अकेला नहीं है। अुसे अपने सिवा और चार आदमियोंका पोषण करना पड़ता है। अुनमें दो छोटे बच्चे हैं; अेक लड़का 'फेरी' में और सामान अुठाने व ले जानेमें मदद करने लायक ही है। मुसलमान होनेके कारण अुसकी स्त्री बाहर मजदूरीके लिअे नहीं जाती।

अुसे समझ लेनेकी जितनी फुर्सत मिलती है अुसके हिसाबसे वह देशकी स्थिति काफी समझता है। खादी, चरखा, असहयोग, गांधीजी — अिन सबके बारेमें वह बिलकुल अनजान नहीं है। अिनमें वह दिल-चस्पी भी लेता है; परन्तु अुसकी भावनाअें जितनी चाहिये अुतनी विकसित नहीं हुअी हैं, अिसलिअे अिन कामोंमें अुसका स्वाभाविक अुत्साह तीव्र रूपमें प्रगट नहीं होता। फिर भी वह कहता था कि अुसने बुनाअी सीखनेके लिअे आश्रममें रहनेकी मांग की थी।

लगभग अेक महीने तक मुझे रात-दिन अुसके सहवासमें आनेका मौका मिला। अुस अर्सेमें मैंने अुसके या अुसके बच्चोंके मुंहसे अेक भी अपशब्द नहीं सुना। अुसके बच्चोंमें मुसलमान जातिका स्वाभाविक अुद्धत तेज था और अुस तेजके कारण अुनका अूधम माता-पिताको जब असह्य हो जाता तब वे बच्चोंको मारते भी थे, परन्तु अुनमें क्षण क्षणमें क्रोधसे या गाली देकर बच्चोंको बुलानेकी आदत नहीं थी। जब गुस्सा करनेकी बात न होती तब प्रेमभरे 'बेटा' शब्दसे ही वे बच्चोंको संबोधन करते थे। कभी कभी फारसी या अुर्दू भजन गाते भी मैंने अुस कुटुम्बको सुना था।

अुनके जीवनमें मुझे अेक खामी मालूम हुअी। वे लोग आठ-आठ दिन तक नहाते नहीं थे और कपड़े तो न जाने कितने दिनमें धोते होंगे। गंदगीसे अुन्हें नफरत नहीं होती थी।

अिस खामीको छोड़ दें तो मेरे खयालसे अिस मियांको हम पूर्ण कुमार-मंदिरकी शिक्षा पाया हुआ मान सकते हैं। हमारे देशका अेक-अेक मनुष्य अितना शिक्षित दिखाअी देगा, तब हमारा प्राथमिक शिक्षाका प्रश्न हल हुआ माना जायगा।

अिसमें से कितनी शिक्षा अुसे पाठशालामें मिली होगी? 'शिक्षा' का प्रचार करनेवाले अिस प्रश्नको किस दृष्टिबिन्दुसे देखें, अिसका मेरे खयालमें यह भाअी अेक अच्छा पदार्थपाठ हमारे समक्ष पेश करता है।

२

अेक बार मैं थोड़े दिनके लिअे आबू पर्वत पर गया था। मुझे गाड़ीके 'ठेकेदार' के कार्यालयमें जाना था। रास्तेका मुझे अच्छी तरह

पता नहीं था। अिसलिअे मैं राह चलनेवाले आदमियोंसे पूछता पूछता आगे बढ़ रहा था। दो गोरे विद्यार्थी सामनेसे आ रहे थे। अेककी अुम्र तेरह-चौदह वर्षकी और दूसरेकी ग्यारह-बारह वर्षकी होगी। मैंने अिन लड़कोंसे ठेकेदारके कार्यालयका रास्ता पूछा।

बड़े लड़केने थोड़ी-सी सूचना दी, परन्तु वह छोटे लड़केको अधूरी लगी। वह जमीन पर घुटनोंके बल बैठ गया और अंगुलीसे रेतमें अुसने हम जहां खड़े थे वहांसे ठेकेदारकी दुकान तकका रास्ता नक्शा खींचकर बता दिया। फिर रास्तेमें आनेवाली सूचक दुकानों और जगहोंके स्थान बताअे और समझाया कि 'अुस कुअेंके पास सामनेकी ओर जरा तिरछे जो भूरा बंगला आयेगा वही ठेकेदारका दफ्तर है।'

यह समझाने और रास्तेका नक्शा खींचनेका काम अुस लड़केने अितनी चपलता और विवेकसे किया कि मुझे अैसा लगा कि सचमुच यह लड़का 'शिक्षित' है।

रास्ता सीधा नहीं था। दाअीं बाअीं तरफ वह कअी तरहसे सांपकी तरह मुड़ता था; परन्तु अुसने मुझे लगभग ठीक रास्ता बता दिया। मैं विद्यापीठ कार्यालयसे रोज साबरमती आश्रम जाता हूं, परन्तु आज भी मुझे अैसा नहीं लगता कि मैं रास्तेके सारे मोड़ अच्छी तरह खींच कर बता सकता हूं। मुझे अैसा लगे बिना नहीं रहा कि वह लड़का मुझसे अधिक अच्छी तरह 'शिक्षित' हुआ है। फिर भी मैं अपने नामके आगे दो अुपाधियां लिख सकता हूं और शिक्षाके विषयमें अनेक आचार्य मुझसे सलाह लेनेकी अपेक्षा रखते हैं। मुझे नहीं लगता कि जबसे मैं राष्ट्रीय मंदिरमें रहा तबसे मैंने विद्यार्थियोंसे जितनी 'शिक्षा' ली है अुतनी मैंने अुन्हें दी होगी।

परन्तु अिस दशासे मैं लज्जित नहीं हूं, क्योंकि छोटे बालकोंसे शिक्षा लेकर ही सच्चा शिक्षक बन सकनेकी मैं आशा रखता हूं।

३

मैं आश्रमसे कार्यालयमें आ रहा था। सामनेसे बारह सालका अेक लड़का तेज चालसे चला आ रहा था। लड़का मुझे नहीं जानता

था, मैं अुसे नहीं जानता था। अुसने मुझे 'वन्देमातरम्' के स्वागतभरे शब्दोंसे नमस्कार किया। अुसकी चाल और आवाज दोनोंमें विनयके साथ तेज दिखाओी दिया।

फिर अुसने पूछा, "आश्रम यहांसे कितनी दूर है?"

"दो मील। वहां तुम्हें किससे काम है?"

"मेरे पिता आश्रममें काम करते हैं, अुन्हें बुलाने जाना है।"

अिस लड़केको 'साहित्य, संगीत और कला' कितने आते होंगे, यह मैं नहीं जानता। परन्तु मुझे अुसकी चालमें, अुसकी आवाजमें और अुसकी विनयमें 'शिक्षा' के लक्षण साफ दिखाओी दिये।

'साबरमती', १९२३

२

शिक्षित और अशिक्षित

१

पिछले साल आश्रमसे विद्यापीठके रास्ते जाते हुअे मुझे चने-मुरमुरे बेचनेवाला अेक मुसलमान बूढ़ा रोज मिलता था। धीरे धीरे सलामसे आगे बढ़कर हम बातचीत करने लगे। अुसकी बातों परसे मैंने जाना कि कुछ वर्ष पहले वह मिलमें काम करता था और बहुत अच्छा कमाता था; बादमें बीमारीके कारण कमजोर हो जानेसे मिलमें काम करने लायक नहीं रहा। अुसने बताया, "सेठने मुझसे कहा कि 'मियां, अब तुम दफ्तरमें आकर चपरासीकी जगह पर बैठे रहना; तुम मरोगे तब तक मैं तुम्हें वेतन दूंगा।' परन्तु अिस प्रकार सेठकी मेहरबानी पर जीना मुझे पसन्द नहीं आया। हम दो आदमी हैं और मेरी सासके साथ शामिलके शामिल और अलगके अलग रहते हैं। मेरी सास कहती, 'बेटा, अब मैं तुझे नौकरी करने नहीं जाने दूंगी। तू शहरसे चने-मुरमुरे लाकर सामने बाड़जके नाके पर बैठा कर। खुदा शाम तक जितना देगा अुससे हम काम

चला लेंगे।' अिसलिअे मैं सुबह शहरसे यहां आता हूं और दोपहरको नदी पार करके सासके घर खाना खा आता हूं। शामको सासके घर टोकरी रख देता हूं और घर चला जाता हूं। अिस प्रकार मेरा धंधा चल रहा है। शाम तक चार-छह आने मिल जाते हैं, और अितना मिल जाय तो क्यों किसीके गुलाम बनकर रहें?"

मुझे अैसा नहीं लगता था कि अिस आदमीने लिखना-पढ़ना सीखा होगा। शायद थोड़ा-बहुत आता भी होगा। परन्तु यह नहीं कहा जायगा कि वह और अुसकी सास शिक्षित नहीं थे।

२

अिससे भिन्न प्रकारका अनुभव मुझे थोड़े महीने पहले अेक राष्ट्रीय शालाके विद्यार्थियोंने कराया। वहांके विद्यार्थियोंने अपनी परेशानियोंकी कुछ बातें मुझे कहीं। वे यदि सच हों (और शिक्षक कहते हैं कि वे सच हैं) तो वे हमारे कौटुम्बिक जीवनकी अधोगतिका करुणाजनक दर्शन कराती हैं।

अिस शालामें अंग्रेजीकी पांचवीं कक्षा तक पढ़ाअी होती है। अधिकांश विद्यार्थी बारहसे पंद्रह वर्षकी आयुके और खासे सुखी घरोंके हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि रघुकुलकी कीर्ति 'प्राण जाय पर वचन न जाअी' की टेक पर बनी थी; अिस गांवके पाटीदार कुलोंके बारेमें मुझे विद्यार्थियोंने कहा कि वे अपनी कीर्ति बड़ी हवेली और विवाहमें किये जानेवाले भारी खर्च पर मानते हैं। पास रुपया हो और दूसरे सद्व्ययके मार्ग सूझने जितनी संस्कारिता न आअी हो तो अुसका अुपयोग अैसे कामोंमें करनेकी वृत्ति होना स्वाभाविक है। अमीरीके साथ अैसा बड़प्पन प्राप्त करनेकी अिच्छा तो आम तौर पर रहेगी ही; अिसलिअे यह परिस्थिति कितनी ही अनिष्ट हो तो भी अुसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

परंतु विद्यार्थियोंने कहा, "अिसलिअे हमारे माता-पिता हमसे कहते हैं कि 'अब पढ़ना बन्द करो; अफ्रीका जाओ और रुपया कमाकर लाओ। पढ़ना ही हो तो सरकारी स्कूलमें पढ़ो जिससे अच्छी नौकरी मिले।' हमारे विवाह अभीसे कर डाले हैं। माता-पिता कहते हैं कि,

'अिस विवाहमें अितना खर्च हो गया; तुम्हारी पढ़ाअी पर अितना खर्च होता है। यह पैसा ला दो नहीं तो घरसे बाहर निकलो।'"

अपने पुत्रको कोअी माता-पिता अैसे वचन कह सकते हैं, अिस पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। किसीने पिताके लिअे 'आशा रखनेवाला बाप' कहा है, परंतु माताके लिअे तो वह भी 'आशा न रखनेवाली मां' कहता है। परंतु अिन विद्यार्थियोंमें से कुछने अपनी माताओं पर भी अैसी भाषाका आक्षेप किया। मैं अिसे न मान सका और अिसलिअे मैंने यही समझ लिया कि अिन विद्यार्थियोंमें अैसी कोअी अुद्धतता रही होगी जिसे सहन न किया जा सके। और अैसा समझकर मैंने अुनसे मातृ-भक्ति और पितृ-भक्तिके बारेमें बात की। मैंने यह भी कहा कि कभी कभी क्रोधके आवेशमें अैसे शब्द माता-पिता बोल देते हैं, परंतु ये अुनके हृदयके स्थिर भाव नहीं होते। अिसलिअे अैसे शब्दोंसे यह कल्पना न कर ली जाय कि 'मां-बाप पैसेके ही सगे हैं।'

मैंने अुस समय विद्यार्थियोंसे कहा था और अब भी मैं मानता हूं कि यह सच नहीं हो सकता कि लड़के माता-पिताको कमाअी लाकर दें तो ही अुन्हें प्यारे लगते हैं। यदि लड़के राम या श्रवण जैसे माता-पिताकी सेवा करनेवाले, विनयी और आज्ञाकारी हों, तो वे निर्धन होने अथवा गरीबी और अीमानदारीसे गृहस्थी चलानेका आग्रह रखनेके कारण माता-पिताको बुरे लगें, यह हो ही नहीं सकता। मेरा तो पिताके बारेमें भी यही अनुभव है और माताके लिअे तो संसारके अधिकतर लोग अिसकी साक्षी देंगे कि माताके लिअे पुत्रका प्रेम अितना बंधनकारक होता है कि वह तंगी भुगतकर भी पुत्रसे दूर रहना नहीं चाहती।

परंतु अिन विद्यार्थियोंने ब्योरेवार अपने घरकी जो स्थिति मेरे सामने रखी, अुस परसे अैसा माननेके लिअे कुछ कारण जरूर है कि हमारे कुटुम्बोंका वातावरण अितनी अधोगतिको पहुंच गया है कि अुसमें माता-पिताके मनमें रुपया ही मुख्य बन जाता है — पैसे मिलनेकी दृष्टिसे ही बालकोंका पालन-पोषण किया जाता है, अुनके विवाह किये जाते हैं, अुन्हें पढ़ाया जाता है।

कोअी रम्य स्वप्न देखनेके बाद सत्य जागृतिमें आने पर मन बहुत बार यह माननेको तैयार नहीं होता कि वह स्वप्न झूठा ही था; अिसी तरह यह मानते हुअे हृदयको आघात लगता है कि माता-पिताके बारेमें मेरी कल्पना गलत और विद्यार्थियोंकी बताअी हुअी अुपरोक्त स्थिति सच्ची ही होगी। मैं मानता हूं कि अिसका दूसरा पहलू भी जरूर होगा। फिर भी बालकोंके प्रति माता-पिताकी शुद्ध बुद्धिके बारेमें दससे पंद्रह वर्षके बच्चोंके हृदयमें शंका अुठ सकती है, यह चीज ही मुझे आघात पहुंचाने-वाली लगती है; और वह — पढ़ाअी कितनी ही हुअी हो, परंतु — शिक्षाका अभाव सूचित करनेवाली लगती है।

अिसके विपरीत पचास वर्षके बूढ़ेको 'बेटा' कहनेवाली और स्वतंत्रता खोनेकी अपेक्षा थोड़ी कमाअीसे संतोष माननेवाली सासकी भावना कितनी स्वाभिमानी और प्रेमपूर्ण जान पड़ती है!

३

तीसरा अनुभव भी आश्रम और विद्यापीठके बीचके रास्तेका ही है। अिस रास्तेसे आनेवाले अेक गांवके बालक वाड़जकी राष्ट्रीय शालामें पढ़ते थे। जाते आते दोनों समय रोज हमारा मिलाप होता था और अेक बार मैं राष्ट्रीय शाला देख आया था अिसलिअे हमारे बीच काफी मित्रता हो गअी थी। दूरसे मुझे सामने आता देखकर वे 'जय जय, किशोरलालभाअी, जय जय किशोरलालभाअी' कहकर दौड़ते हुअे आते; मुझसे घड़ी निकलवाकर कितने बजे हैं, वह जाननेका लगभग रोजका कार्यक्रम रहता; कभी कभी वे चनोंकी मांग करते। शालामें छुट्टी होती तब वे रास्तेके पेड़ पर चढ़ जाते। मुझे पेड़ परसे देखकर डालीके पीछे छिप जाते और पुकार कर ढुंढ़वानेकी कोशिश करते थे। हमारी यह मित्रता कअी महीनों तक चली।

परंतु बादमें अुसमें अेक विघ्न आ गया। कुछ मास पूर्व वाड़जमें अंत्यज-प्रवेश होनेसे अिन लड़कोंने राष्ट्रीय शालाका त्याग कर दिया और वे मुझसे नाराज हो गये। संभव है अुनका यह भी खयाल हो कि वाड़जमें अंत्यजोंको लानेमें मेरा हाथ है। अब वे सरकारी शालामें जाते हैं।

अब भी हम आमने-सामने मिलते हैं। परंतु अब मुझे 'जय जय' कैसे किया जा सकता है? मैंने अेक बार अुनसे कहा, "तुम सरकारी शालामें भले ही जाओ, परंतु अिससे हमारे बातें करनेमें क्या हर्ज है?" परंतु यह मित्रता अब अुनके लिअे स्वप्नवत् हो गअी। पहले तो वे मेरी आंखोंसे अपनी आंखें न मिलने देते। मुझे दाअीं ओर चलता देखकर वे बाअीं ओर हो जाते और मुंह अुल्टी दिशामें कर लेते। अेक विद्यार्थी, जो पहले मुझे देखते ही हंस देता था, अब हंसी न आने देनेके लिअे मुंह बन्द करके दूसरी दिशामें गरदन मोड़कर चलने लगा।

मित्रताके स्थान पर तिरस्कारकी वृत्ति अुत्पन्न हो जाय तो वह कितनी तेजीसे बढ़ती है, यह मुझे अब देखनेको मिलने लगा।

धीरे धीरे अिन लड़कोंकी वृत्तिमें फर्क पड़ने लगा। अब वे रास्ते या आंखोंकी दिशा नहीं बदलते, परंतु आंखें बड़ी करके और छाती निकालकर सामने आते हैं और मेरे दोनों ओरसे पासमें होकर चले जाते हैं।

अेक दिन मुझे छोड़कर बहुत आगे चले जानेके बाद मैंने अुन्हें 'केसला, केसला' चिल्लाते सुना। अुस दिन अिसका मर्म मैं न समझ सका; परंतु बादमें अनुभव बढ़ता गया। अब अुन्हें अैसा नहीं लगता कि अिस तरह चिल्लानेके लिअे अुन्हें बहुत दूर जाना चाहिये। अब मेरे मुंह-पर ही कभी-कभी अेकाध गालीके साथ यह आवाज लगाअी जाती है। मैं जानता हूं कि यह आदत लंबे समय तक टिकेगी नहीं। थोड़े दिन बाद अुनको अिस चिल्लाहटमें आजका-सा रस नहीं मालूम होगा। और जब चित्तको खींचनेवाला कोअी और विषय मिल जायगा तब वे मुझे भूल जायंगे। परंतु यह वस्तु विचार करने जैसी है।

वे लड़के सातसे दस वर्षके बीचके हैं। अुनकी पढ़ाअी राष्ट्रीय शालामें या सरकारी शालामें नियमित रूपमें होती रही है। फिर भी अुन्हें सच्ची शिक्षा देनेका घरमें या पाठशालाओंमें प्रयत्न हुआ हो, अैसा मुझे नहीं लगता। अुनकी स्वाभाविक मधुरताका भी हनन होने लगा है, यह स्थिति कितनी दयाजनक है?

नवजीवन (केळवणी अंक), २६–७–'२५

३

ज्ञान या अज्ञान?

१

मैं जब छोटा था तब अेक वृद्ध मारवाड़ी महिला मेरे घर पर हमेशा आती थी। सम्राट जॉर्ज जब राज्याभिषेकके लिअे भारतमें आनेवाले थे, तब अुस प्रसंग पर अुत्सव मनानेके लिअे जैसे स्थान स्थान पर धूमधाम मची हुअी थी वैसे हमारे गांवमें भी हो रही थी। अेक दिन अुस महिलाने मुझसे पूछा, "भाअी, यह क्या हो रहा है? लोग कहते हैं कि राजा आनेवाला है, राजा आनेवाला है। कौनसा राजा आनेवाला है?"

मैंने समझाया, "हमारे देशके बादशाह जॉर्जका राज्याभिषेक होनेवाला है।"

महिलाने कहा, "परन्तु हमारे देशमें तो रानीका राज है न?"

मैं चकित हो गया। रानीकी मृत्यु हो गअी, अेक दशक तक राज्य करके अेडवर्डकी मृत्यु हो गअी और अब अुसके लड़केकी राज्य करनेकी बारी आ गअी, यह सब अिस महिलाको आज भी जानना बाकी है। वॉशिंग्टन अिर्विंगको अमरीकामें बीस वर्षमें हुअे फेरबदलकी विलक्षणता दिखानेके लिअे रिप वान विंकलको बीस साल तक सुला देना पड़ा। परंतु हमारे देशमें अिस महिलाको तो सारे गांवके अेक-अेक देवालयके दर्शनोंका नियम पालन करनेके लिअे रोज सुबह छह से बारह बजे तक घूमते रहना पड़ता है, तो भी अुसे बारह वर्षमें रानीके मरनेकी बात मालूम हुअी।

मैंने रानी और अेडवर्डके मरनेकी बात कही। अुसने कहा: "तो हमारे देशसे अब स्त्रियाराज चला गया और पुरुषका राज हो गया!"

बेचारी अिस महिलाको अैसा लगता था कि अितने बड़े मुल्क पर अेक स्त्री राज करे, यह कैसी अद्भुत बात है! अुस स्त्रीका कितना बल और पराक्रम होगा!

ब्रिटिश राज्यकी रचना अिस प्रकारकी है कि अुसमें राजगद्दी पर वैठनेवाला पुरुष हो या स्त्री दोनों अेकसे ही निःसत्त्व हैं और अुस गद्दी पर बैठनेके लिअे किसी बल-पराक्रमकी जरूरत नहीं होती, अेक विशेष वंशमें विशेष प्रकारसे होनेवाले जन्मकी ही जरूरत पड़ती है; राजगद्दी पर बैठनेवाला राज्य करनेवाला नहीं होता, राज्य करनेवाला दूसरा ही होता है — यह सब अिस महिलाको किस तरह समझाया जा सकता है, अिस बारेमें मैं विचारमें पड़ गया।

फिर भी, वह महिला कोअी अज्ञानमें संतोष माननेवाली नहीं थी। भरी जवानीमें वैधव्य प्राप्त हो जानेके बादसे लकड़ीके सहारे चलनेकी शक्ति रही तब तक बहूको बाधा होती तब लड़केको खाना बनाकर खिलाने और व्रत न हो अुस दिन अेक बार पेटको भाड़ा देनेके सिवा बाकीका सारा समय अुसका साधुओंकी खोजमें जाता। गांवमें कोअी नये वैरागी आये हैं, यह सुनते ही वह सबसे पहले अुनकी पूछताछ कर आती। मारवाड़ी होने पर भी नियमित रूपमें 'वचनामृत' सुन-सुन कर अुसकी भाषा अुसे आने लगी थी और 'भक्त-चिन्तामणि' तथा 'निर्गुणदासजीकी बातें' सुनकर श्री सहजानंद स्वामीका चरित्र अुसकी दृष्टिके सामने स्पष्ट तैरता रहता था। भजन तो अुसे अनेक आते थे और वृद्धावस्थामें भी नये नये सीख लेती थी। अेक तरफ अुसे अपने पातिव्रत पर यह विश्वास था कि अुस पर कुदृष्टि रखनेवालेका भला हो ही नहीं सकता और दूसरी तरफ रक्षा करनेवालेके रूपमें अीश्वर पर अुसकी दृढ़ श्रद्धा थी। और वह अिसका वर्णन भी करती थी कि जवानीके दिनोंमें अुसे तंग करने आनेवालोंके क्या हाल हुअे थे।

ये सब ज्ञान प्राप्त करनेकी जाग्रत पिपासाकी निशानियां थीं, परंतु काफी विवेक-शक्ति न होनेसे यह ज्ञान-पिपासा फलीभूत नहीं हो सकती थी और जिज्ञासा होते हुअे भी अज्ञान ही बना रहता था। क्योंकि आप अुसके सामने चिढ़ानेके लिअे भी 'छी' करके खड़े रहें या लंबा बांस लेकर अुसके सामने जायं तो वह वहींकी वहीं दस मिनट बैठ जाती, कोअी अच्छा चिकना या रंगीन पत्थर दे दे तो वह अुसके देवताओंके संग्रहमें जुड़ जाता और फिर रोज अुसकी भावपूर्वक सेवा होती। अिस प्रकार

ताम्रपात्र भरकर देवता अुसके पास जमा हो गये थे। गांवके अेक अेक शिवालय और वैष्णव मंदिरके सिवा हमारे जैसोंके यहां जो खानगी देवसेवा होती वहां भी अुसकी वारियां बंधी हुआी थीं। गरज यह कि अुसमें श्रद्धा थी, पवित्रताका शौर्य था, परंतु विवेकके अभावमें अनन्यता — दृढ़ धारणा — नहीं आ पाती थी, और अिसलिअे व्यवहारज्ञान या अध्यात्मज्ञानमें से अेक भी बढ़ नहीं पाता था।

२

दूसरी बात ताजी है। दासबाबूकी मृत्युको चार दिन हुअे थे। मैं आश्रमसे कार्यालय जा रहा था। रास्तेमें अेक रबारी (अहीर) से भेंट हुआी। बहुत दूरसे अकेले ही चल कर आनेकी अुकताहटके कारण या बातूनी स्वभाव होनेके कारण, कोआी निमित्त मिलते ही (जो मुझे याद नहीं) अुसने मुझसे बातें करना शुरू कर दिया।

अुसने कहीं सुना था कि अहमदाबादके किसी मंदिरके वैरागियों और मुसलमानोंमें झगड़ा हो रहा है। वह मुझसे अिसके बारेमें पूछताछ करने लगा। परंतु अिस विषयमें मैं अुससे भी अधिक अज्ञानी निकला। मुझे अिस विषयकी कुछ भी जानकारी नहीं थी। अिसलिअे झगड़ेकी जड़ वगैरा अुसीने मुझे समझाआी और अब यह जाननेको अुत्सुक था कि आगे मामला कहां तक पहुंचा है। अुसे आश्चर्य हुआ कि मैं शहरके अितने नजदीक रहते हुअे भी कुछ नहीं जानता, परंतु जो सत्य था अुसे मैं कैसे बदल सकता था!

परंतु अुसे तो किसी न किसी तरह बातें करके रास्ता काटना था, अिसलिअे अुसने विषय बदला और मुझसे परिचित विषय पर पूछना शुरू किया।

"गांधी महात्मा यहीं हैं?"

"नहीं, बंगाल गये हैं।"

"गांधी महात्मा क्या बंगालके हैं? वे बंगालमें क्यों रहते हैं?"

मैंने कहा, "नहीं, भाआी, वे तो यहींके हैं। काठियावाड़के हैं। किसी कामसे बंगाल गये हैं।"

"यहांके हैं? किस गांवके?"

"पोरबंदरके।"

"यह बंगाल तो वही है न जो गोपीचंद राजाका मुल्क कहलाता है?"

"हां, वही।"

गोपीचंद राजाके कारण ही अुसे बंगालका परिचय था। अुसने गोपीचंद राजपाट त्यागकर विरागी बने अुसका भजन गाना शुरू किया। अुसका आरंभ मैं भूल गया हूं। परंतु बीच-बीचमें अुसकी आलोचनायें चलती रहती थीं।

"कितना बड़ा राजा था! देखिये न:

'अींडा, पिंगळा, सुखमणी नारी,
बारसें परणी ने तेरसें कुंवारी!'*

अितना बड़ा वैभव और माया छोड़ते अुसे जरा भी देर लगी? और हमने छोटा-सा अेक गधा पाला हो, तो अुसकी माया भी हम नहीं छोड़ सकते!"

मैं सोचने लगा कि अिस आदमीको ज्ञानी कहूं या अज्ञानी। अेक तरफ गोपीचंद राजा और अुस रबारीके बीच कितनी ही शताब्दियां बीत गयीं। अिस बीच बंगालमें कितनी ही अुथल-पुथल हो गयी, जिसकी अुसे जरा भी गंध नहीं। अुसके मस्तिष्कमें तो गोपीचंद राजाके साथ ही बंगालका साहचर्य है! दूसरी तरफ हमारे पढ़े-लिखोंने गोपीचंदका नाम सुना होगा, कदाचित् अुसका नाटक देखकर थोड़ी-बहुत अुसकी

---

* अिस गुजराती लोक-भजनका शब्दार्थ है—(गोपीचन्द राजाकी) अींडा, पिंगळा और सुखमणी वगैरा सैकड़ों स्त्रियां थीं; अुसके रनवासमें १२ सौ विवाहित और १३ सौ कुंवारी लड़कियां थीं। अिस भजनमें हठयोग सम्बन्धी अिडा, पिंगला, सुषुम्णा वगैरा नाड़ियोंका रूप बिगड़कर अूपर जैसा हो गया है और नाड़ीका नारी बनकर अुपरोक्त अींडा, पिंगळा वगैरा राजाकी सैकड़ों स्त्रियोंकी कल्पना विचित्र ढंगसे घुस गयी है।

कथा जानी होगी, परंतु बंगाल या अुज्जैनका अुन्हें कुछ भी खयाल नहीं होगा। जिस ग्वारीके लिअे गोपीचंद और बीसवीं सदीके बीचका बंगालका अितिहास नींदमें चला गया; हममें से बहुतोंको जैसे नींदके बीच-बीचमें सपने आ जाते हैं, वैसे ही अितिहासमें पठानों या अकबर या शुजाके संबंधमें बंगालकी कुछ कुछ झांकी हो जाती है, परंतु अैसा लगता है कि बंगालके अितिहासका प्रभात सिराजुद्दौला या क्लाअिवसे ही हुआ है।

गोपीचंदका धार्मिक जीवनके साथ कोअी संबंध न हुआ होता, तो अिस भाअीको गोपीचंदका नाम सुननेका प्रसंग न आता। धार्मिक जीवनके साथ जुड़ जानेके कारण गोपीचंद-संबंधी जानकारी भक्तों द्वारा भजनोंके जरिये अनजानसे अनजान हिन्दू तक पहुंच गअी; परंतु अन्य ज्ञानके अभावमें अुस जानकारीका भी शुद्ध स्वरूपमें पहुंचना कितना कठिन है, यह 'अींडा, पिंगळा, सुखमणी नारी, बारसें परणी ने तेरसें कुंवारी' की विचित्र रूपमें भ्रष्ट हुअी साखी दिखा देती है। यह भ्रष्टता केवल भाषाकी भ्रष्टता नहीं, परंतु पदार्थकी पहचान संबंधी भ्रष्टता भी है।

दूसरी ओर अिस ग्वारीको गोपीचंद राजा अैसा लगता है मानो कलकी ही दुनियाका विषय हो; परन्तु हमारी आजकी दुनियाके विषय — दासबाबू — का अुसके जीवनमें क्या स्थान है? दासबाबू मर गये, यह कहनेसे अुस पर क्या असर होगा? जब वह यह नहीं जानता कि अैसा कोअी आदमी था, तब अुसके मर जानेकी बात जानकर अुस पर भला क्या असर होगा? और अुनसे भी अधिक प्रसिद्ध महात्मा गांधी हैं, जिनका नाम तो अुसने किसी प्रकार सुन लिया है, परंतु गोपीचंदके बंगाली होनेका अुसे जितना पता है अुतना गांधीके गुजराती या बंगाली होनेका अुसे पता नहीं है!

दासबाबूके स्मारकका चंदा अिकट्ठा करनेके लिअे गांव-गांव जाकर हम किस मुंहसे अुस स्मारकके लिअे रुपया देनेको अैसे ग्वारीसे कह सकते हैं, यह विचार सहज ही मनमें अुठता है।

बड़ेसे बड़े नेताओं द्वारा निकलनेवाले सभी अखबारों, पुस्तकों और भाषणोंका यह ज्ञान देनेमें कितना हाथ है? तमाम राजनीतिक हलचलोंमें जनताका यह वर्ग किस प्रकार दिलचस्पी ले सकता है? जनताका

अधिकतर भाग क्या अिस रखारीकी कोटिका ही नहीं है? और अिस जनताकी जागृतिके बिना क्या देशकी गाड़ी आगे बढ़ेगी?

तीसरी तरफ यह भी सोचने लायक बात है कि अिस रखारीके जीवनको अितना संस्कारी बनानेमें किसका हाथ रहा है। गोपीचंद विरागीका अितिहास अुसने किसकी शालामें पढ़ा? गधे जितनी माया भी हम नहीं छोड़ सकते, यह आत्म-परीक्षण अुसे कहांसे मिला? हमारे देशके अज्ञानीसे अज्ञानी भागमें भी जो संस्कारिताके कुछ बीज हैं, अुन्हें डालनेवाला कौनसा वर्ग है? यह कार्य करनेवालोंकी जीवन-पद्धति कौनसी है? हमारे देशकी परिस्थिति ही अिस प्रकारकी है कि अपने कल्याणके लिअे व्याकुल भक्त ही अुस जनता तक पहुंच सकते हैं; दूसरोंका कल्याण करनेका भार लेकर बाहर निकले हुअे लोग अुसे स्पर्श नहीं कर सकते।

यह सच है कि अुन भक्तोंमें भी संकुचित दृष्टि रह जाती है। जिसके कारणों पर स्वतंत्र रूपमें विचार करना चाहिये। फिर भी देशको संस्कृत करनेमें अुनका जो बड़ा हाथ है और अुनके जीवनमें देशको संस्कृत बनानेकी जो शक्ति है, अुसका अुचित मूल्य स्वीकार किये बिना काम नहीं चलेगा।

अैसी है हमारी जनता। अेक तरफ अुसमें कुछ सुसंस्कारोंके बीज हैं, दूसरी ओर अज्ञानकी गहरी पैठी हुअी घास है। हमारी वर्तमान शिक्षा अुस अज्ञानकी घासको खोद निकालनेका कुछ प्रयत्न कर रही है; परंतु जिस प्रकार हमारे जैसे केवल पढ़े-लिखे आदमी खेतमें निदाअी करने लगें तो बाजरे और घासका भेद न जान सकनेके कारण घासके साथ बाजरा भी अुखाड़ डालेंगे, वैसे ही हमारी मौजूदा शिक्षा अक्सर अुस अज्ञानके साथ सुसंस्कारके बीजोंको भी खोद डालती है। नींदनेवालेको अुपयोगी वनस्पति और जंगली वनस्पतिके बीचका भेद जानना चाहिये; वैसे ही हमें भी अपनी जनताके अज्ञान और अुसके सुसंस्कार दोनोंको पहचानना चाहिये।

नवजीवन (केळवणी अंक), २७–९–'२५

४
परिचारक भील

जेलके अस्पतालमें मुझे बार-बार जाना पड़ा था। अस्पतालके परिचारकोंमें अेक भील कैदी था। वह बिलकुल जड़ और स्मरण-शक्तिहीन लगता था। अुम्र पचासके लगभग होगी। मुझ पर बहुत ममता रखता था। मुझे बार-बार यह विचार आता था कि मैं अुसे क्या सिखाअूं। दो-चार बार मैंने अुसे लिखना सीखनेको ललचाया, परंतु अिस बारेमें वह निराश हो गया था। वह जवाब देता था, "मुझे बहुत लोगोंने बार-बार पढ़नेके लिअे कहा, परंतु अुनकी बात मुझे जंची नहीं। अब आप कहते हैं अिसलिअे अैसा लगता है कि पढ़ लेता तो अच्छा होता; परंतु अब बूढ़ा हो गया हूं, अब मुझे नहीं आयेगा।" मैंने अुसे स्वयं पढ़ानेका वचन दिया और यह विश्वास दिलाया कि जरूर आ जायगा। परंतु अुसे विश्वास नहीं हुआ।

सारे जीवनमें अुसने दो भजन जितना साहित्य भी नहीं सीखा था। हिन्दू-धर्मके किसी देवी-देवता अथवा राम-कृष्णके नाम भी वह नहीं जानता था, तब अवतारोंके चरित्र तो कहांसे जानता? मैंने सोचा कि पढ़ नहीं सकता तो कहानियों और भजनों द्वारा ही अुसे कुछ न कुछ ज्ञान दिया जाय।

काल्पनिक कहानियोंके लिअे अपना विरोध अलग रखकर मैंने अुसे चिड़ा-चिड़ी और पशु-पक्षियोंकी कहानियां सुनाना आरंभ किया। वह अुमंगपूर्वक सुननें जरूर बैठता और अिस तरह हंसता मानो अुसे बड़ा मजा आ रहा हो। परंतु अुसकी आंखोंसे मुझे मालूम हो जाता था कि कहानीका अेक अक्षर भी वह नहीं समझता। मैं अुसे पूछता: "क्यों भाअी, मैं किसकी बात कह गया, बता तो?" तब वह जवाब देता: "यह मुझे पता नहीं चलता। आप बात कहते हैं सो मैं सुनता हूं। परंतु याद रखना मुझे नहीं आता।"

मैं विचारमें पड़ गया। मुझे लगा कि अिस अुम्रमें अिन तुच्छ बातोंमें अुसे मजा नहीं आता होगा। फिर मैंने रामकी कहानी कहना शुरू किया। अेक दिन थोड़ी-सी कही। दूसरे दिन पूछा कि कल शामको क्या बात कही थी। जवाबमें 'शून्य'। मैंने फिर शुरूसे वह कहानी

कही और तीसरी शामको फिर पूछा। फिर वही शून्य। अुसे यह भी याद न रहता कि मनुष्यकी बात कही थी.या जानवरकी!

मैं सोचने लगा कि अब क्या किया जाय। अेक दिन मैंने अुससे यों ही पूछा: "तुझे तीर-कमान चलाना आता है?" बस; प्रश्न पूछनेकी ही देर थी। जोरसे 'हां' कहकर वह अत्यंत अुत्साहमें आ गया। और मुझसे कहने लगा कि वह अैसा बढ़िया तीरंदाज है कि अुड़ते पक्षियोंको भी नीचे गिरा सकता है।

कहानियोंका थोड़ा-सा मसाला मुझे मिल गया। नाम दिये बिना मैं अुसे अब धनुर्विद्याकी विविध कहानियां कहने लगा। दशरथके शब्दवेधकी, अर्जुनके द्रौपदी-स्वयंवरकी, द्रोण द्वारा तीरसे कुअेंमें से बाहर निकाली हुअी गिल्ली वगैराकी कहानियां मैंने अुसे सुनाअीं। अब अुसकी स्मृति जाग्रत हो गअी। ये सब बातें वह अच्छी तरह याद रख सकने लगा। (नामोंको छोड़कर — नाम तो वह किसीका भी याद नहीं रख सकता था। आठ नौ महीने वह हम सबके साथ रहा, परंतु अंत तक वह चार जनोंको भी नामसे नहीं पहचान पाया। वे 'मोटे भाअी' और वे 'गोरे भाअी' अिस प्रकारके वर्णनसे ही वह निर्देश कर सकता था।)

दशरथकी अपेक्षा अर्जुनके बींधे हुअे यंत्र-मत्स्य पर वह अधिक मुग्ध हुआ और द्रोण पर तो वह फ़िदा ही हो गया। "सच्चा बामन, सच्चा बामन! कुअेंमे गिरी हुअी गिल्लीको तीरसे अुछाल कर बाहर निकाल लिया! वह सच्चा तीरंदाज था!"

अिस परसे मुझे अेक सूचना मिल गअी कि वह कौनसी बातें समझ सकता है और याद रख सकता है।

थोड़े समय बाद 'यह कैसे सूझा?' नामक रूसी पुस्तक मेरे पास आअी। अिस भीलके साथ अेक दूसरा कैदी भी था। भील जितना जड़ था, अुतना ही वह चालाक था। लगभग सारी जिन्दगी अुसने जेलमें ही गुजारी थी। मुझे अैसा लगा कि यह कहानी अुसके अधिक योग्य है, और अुसे कहनेका मैंने विचार किया। साथमें भील भी बैठता था। मैंने यह आशा नहीं रखी थी कि भील अिसे समझ सकेगा। परंतु परिणाम मुझे अत्यंत आश्चर्यजनक मालूम हुआ।

मैं यथाशक्ति नाम छोड़ कर ही बातें करता था; कभी कोअी नाम देना ही पड़ता तो अेक भील या दर्जी अैसा साधारण नाम दे देता अथवा रूसीके बजाय कोअी देशी नाम रख देता। कहानी कहां तक पहुंची है, यह मुझे भील दूसरे दिन बारीक ब्योरेके साथ कह सुनाता। वह राम-लक्ष्मण अथवा बालकृष्णकी बातें नहीं समझ सकता था; परंतु अिस रूसी कहानीके सब पात्रोंके अटपटे पराक्रम बारीकीसे याद रख सकता था!

यह कहानी मैं पूरी नहीं कर सका; अिसलिअे अुसका महत्त्वका जो अंतिम भाग था वहां तक नहीं पहुंचा जा सका। परन्तु मैंने देख लिया कि राम-लक्ष्मण जैसे पात्रोंके साथ अुसका अपने जीवनमें कोअी संबंध नहीं बंधा था, अिसलिअे अुनकी बातोंमें अुसकी स्मृति मंद थी; परन्तु झूठे नोट बनानेवाले, दीवारमें सेंध लगानेवाले और घोड़े चुरानेवाले लोगोंको वह अच्छी तरह पहचानता था, अिसलिअे अुनकी कहानियां अुसे आसानीसे याद रहती थीं।

मैंने यह सोचकर अिसका वर्णन किया है कि मानसशास्त्री और शिक्षक अिस अनुभवसे बहुत कुछ निष्कर्ष निकाल सकेंगे। अिस पर अधिक विवेचन करनेका काम मैं अुन्हींको सौंपता हूं।

'श्रीदक्षिणामूर्ति', अगस्त १९३१

५

सभ्यताके आधार-स्तंभ

पढ़े-लिखे लोगोंको शारीरिक परिश्रम करनेमें शर्म आती है। आठ-दस घंटे दफ्तरमें बैठना, नकलें करना, टाअिप करना, हिसाब मिलाना, प्रूफ देखना, पुस्तकें लिखना वगैरा अूंचे माने हुअे काम करनेमें वे जितने नहीं अुकताते, जितने खाना बनाना, कपड़े अथवा बर्तन धोना, झाडू लगाना, पीसना, कूटना, कातना, नालियां धोना, पाखाने साफ करना वगैरा कामोंसे अुकता जाते हैं। किसी तरह यदि अुन्हें कभी छोटा-सा भी बोझा अुठाकर चलना पड़े तो बड़ी शर्म आती है। तब बढ़अी, लुहार,

राज वगैरा कारीगरोंका काम तो वे थोड़ा भी कैसे सीख सकते हैं? और यदि छोटा-सा भी अैसा काम निकल आये तो अुन्हें हाथ जोड़कर खड़े रहना पड़ता है। कलम, स्याही और कागजसे चिपटे रहकर काम करनेमें कितने ही घंटोंका श्रम क्यों न करना पड़े और अुससे अर्थप्राप्ति कितनी ही कम क्यों न हो, तो भी अुसमें प्रतिष्ठा मानी जाती है। परन्तु मेहनत-मजदूरीका काम, भले अुसमें स्नायुओं पर जोर पड़ता हो, शरीरको लाभ होता हो और रुपया भी अधिक मिलता हो, अप्रतिष्ठित माना जाता है।

अमुक काम अूंचा अथवा प्रतिष्ठायुक्त है और अमुक नीचा अथवा प्रतिष्ठाहीन है, यह खयाल कभी कभी लोकसेवकोंमें भी पाया जाता है। हरिजन वगैरा पिछड़ी हुअी जातियोंमें विद्या-प्रचारकी अपनी प्रवृत्तियोंके साथ हम कभी कभी अिन विचारोंका भी प्रचार कर देते हैं। 'विद्या' पढ़ो जिससे तुम अच्छी नौकरी पा सकोगे, पाठशालामें शिक्षक बन सकोगे और तुम्हें घर-नौकर, मजदूर, कारीगर और भंगीका काम नहीं करना पड़ेगा।' अिस प्रकारकी बातें कभी कभी दलितोंके सेवक नासमझीमें कह डालते हैं। अिसी तरह स्त्रियोंसे भी कहा जाता है कि 'आज तक तुमने खाना बनाया, बर्तन मले, बच्चोंको संभाला; अब चूल्हा छोड़ो, चक्की बन्द कर दो, बच्चोंको छात्रालयमें भेज दो, और बाहर निकलकर समाजके काममें लगो।' अिस प्रकारकी बातोंसे यह मालूम हो जाता है कि अैसे कामोंके बारेमें लोकसेवकोंके कैसे खयाल हैं।

मेरी समझमें अैसे विचार हम खुद अपने लिअे रखें यह भी दुर्भाग्य है। तब जिन लोगोंकी हम सेवा करना चाहते हैं, अुनके दिमागमें अैसे विचार अुत्पन्न करना अुनकी सेवा नहीं परन्तु कुसेवा ही है। विचार करने पर मालूम होगा कि दफ्तरोंके कामके बिना मानव-समाजके लिअे सभ्य जीवन बिताना असंभव नहीं है। परन्तु भोजन, बच्चोंका पालन आदि गृहिणी-कर्म, झाड़ना, लीपना, मांजना, धोना आदि भृत्यकर्म और अनाज अुगाना, मकान बनाना, कपड़े बुनना वगैरा किसान और कारीगरके कर्मके बिना सभ्य जीवन जीना असंभव है। अितिहाससे भी जान पड़ता है कि अनेक जातियां अैसी हो गअी हैं, जिनमें कारकुनी या लेखन-वृत्ति

न होते हुअे भी वे संस्कृत और समृद्ध थीं। अितना ही नहीं, परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि कारकुनी — कार्यालयविद्या — कायस्थविद्या तो हाल ही में अुत्पन्न हुअी है। मनुष्य-समाजका काम हजारों वर्ष तक अुसके विना ही चलता रहा। और आज भी यह माननेका कोअी कारण नहीं कि यदि सारी कार्यालय-व्यवस्था अेकदम वन्द कर दी जाय, तो मनुष्य-समाज पर भूकम्प जैसी कोअी बड़ी आफत टूट पड़ेगी।

अिंग्लैण्डमें वकील, डॉक्टर तथा अध्यापकके धंधोंको माननीय धंधे कहनेका रिवाज है। अिन धंधोंको साधारण लोगोंने यह विशेषण नहीं दिया है, परंतु अिन धंधोंवालोंने स्वयं ही अपने धंधोंके लिअे यह विशेषण लगा लिया है। अिसी प्रकार हम दफ्तरका काम करनेवालोंने कारकुनीके कामको प्रतिष्ठित धंधा मान लिया है।

वास्तवमें देखा जाय तो मानव-सभ्यताकी स्थिति और वृद्धिके लिअे मुंशीगिरीकी अितनी जरूरत नहीं, जितनी गृहिणी-कर्म, भृत्यकर्म, कृषिकर्म तथा कारीगरके कामकी है। भले यह कर्म स्त्री करे या पुरुष, शिक्षित लोग करें अथवा अशिक्षित, हाथसे करें या यंत्रसे, प्रेम और धर्मबुद्धिसे करें अथवा रुपयेके लिअे करें। जिस समाजमें धान्य पैदा करना, पीसना, कूटना, खाना बनाना, कपड़े बुनना और सीना, घर, कपड़े और बर्तन साफ करना, मुहल्ला, नगर और श्मशान स्वच्छ रखना अित्यादि काम सुव्यवस्थित ढंगसे होते रहनेका प्रबंध न हो, अुस समाजमें कितने ही विद्वान तर्कशास्त्री, प्रतिभावान कवि, प्रखर गणित-शास्त्री, सूक्ष्म ज्योतिषशास्त्री, कुशल मंत्री और कार्यालय-व्यवस्था करनेमें प्रवीण प्रबंधक हों, तो भी अुसकी सभ्यता टिक नहीं सकती। अिन कार्योंके लिअे यंत्रका अधिकसे अधिक अुपयोग हो, तो भी अिन यंत्रोंके लिअे किसी मनुष्यके हाथकी जरूरत रहेगी ही। और जिन हाथोंसे जमीन जोतने, बीज बोने, धान्य अिकट्ठा करने, अुसे कूटने, पीसने और पकाने, बच्चोंको पालने, मकान बनाने, कपड़ा बुनने, नालियां, पाखाने और मुहल्ले साफ करने वगैराके यंत्र चलेंगे, वे हाथ सभ्यताके आधार-स्तंभ होंगे; न कि वे हाथ जिनसे केवल कागज पर अक्षर लिखे जाते रहेंगे। यह सच है कि पढ़े-लिखे लोगोंने मानव-सभ्यताको बढ़ानेमें और सुशोभित करनेमें काफी

भाग लिया है और अुसकी ख्याति भी बढ़ाअी है। परन्तु साथ ही यह न भूलना चाहिये कि दीवारकी शोभा रंगसे बढ़ती है तो भी दीवार ही रंगका आश्रय है और दीवारके बिना रंगको स्थान ही नहीं मिल सकता। अिसी तरह सभ्यताके आधार-स्तंभ प्रतिष्ठित माने हुअे धंधे नहीं, परन्तु पढ़ी या बेपढ़ी गृहिणियों, भृत्यों, कृषकों और कारीगरोंके धंधे हैं। अिन धंधोंको अप्रतिष्ठित कहना अथवा समझना या अुनके प्रति अनादर रखना, अुन्हें करनेमें शर्म आना और अुन्हें अच्छी तरह करनेके अुपाय खोजनेमें रस न लेना विद्वत्ताका लक्षण भले ही हो परन्तु सभ्यताका नहीं; और लोक-सेवकोंके अनेक कर्तव्योंमें अेक यह भी समझना चाहिये कि वे स्वयं अिन कामोंमें भाग लेकर अिनकी प्रतिष्ठा बढ़ायें और अिन्हें करनेकी पद्धतियोंमें संशोधन करें। गांधीजी जिसे शरीर-श्रम (श्रमयज्ञ, ब्रेड लेबर) का सिद्धान्त कहते हैं, वह यही है।

हरिजनबन्धु, ३–२–'३५

६

धंधेका निश्चय

१

अपने गुजरातके दौरेमें सरकारी या राष्ट्रीय, हरिजन अथवा हरिजनेतर, जिन जिन शालाओं या छात्रालयोंमें मुझे बोलनेका मौका मिला, वहां मैं जो अेक प्रश्न सबसे पूछता था वह यह है : 'तुम बड़े होकर कौनसा धंधा करके अपना गुजारा करोगे, यह तुमने तय कर लिया है?' बेशक, कोअी दर्जनभर तरुण या लड़के मुश्किलसे अैसे मिले, जिन्होंने अपना भावी धंधा निश्चित कर रखा था। कॉलेजके विद्यार्थी भी अधिकतर यह नहीं जानते थे कि वे ग्रेज्युअेट होनेके बाद निश्चित रूपसे कौनसा धंधा करेंगे। विनय-मंदिरोंके विद्यार्थियोंमें से अधिकांशको यह सवाल सुनकर अुलटा आश्चर्य हुआ। अैसा प्रश्न विनय-मंदिरकी भूमिकामें पूछा ही कैसे जा सकता है? कुमार-मंदिरके विद्यार्थियोंको

जब मैंने यह प्रश्न पूछा तब तो शिक्षकोंको भी आश्चर्य हुआ; और जब मैंने बाल-मंदिरोंके शिक्षकोंके सामने यह बात रखी कि प्रत्येक बालकको बड़ा होकर जीविकाके लिअे क्या धन्धा करना है, अिसका निश्चय आपके बालकोंसे बाल-मंदिरमें ही करा लीजिये, तब अुन्हें कैसा लगा होगा यह मैं नहीं जानता।

प्रवाससे लौटनेके बाद अेक शिक्षककी तरफसे मिले पत्रमें से नीचेका भाग अुद्धृत करता हूं:

> "आप छुटपनसे ही अिस बातका विचार करनेकी सलाह देते हैं कि बालकको बड़ा होकर किस धंधेमें जाना है। परन्तु क्या छोटी अुम्रमें यह तय करने लायक समझ बालकोंमें आ जाती है? जिस अुम्रमें दुनिया देखी न हो, अपनी अभिरुचि या कुशलताका पता न हो, अुस अुम्रमें अैसा प्रश्न निश्चित ही कैसे हो सकता है? मुझे तो लगता है कि विनीत होने तक बालक साधारण शिक्षा लें, हाथ-पैर हिलाना सीखें, भिन्न भिन्न धंधोंके बारेमें जानें, और बादमें वे अपना मार्ग निश्चित करें। अुद्योगोंमें बढ़अी, लुहार और दरजीका काम थोड़ा-थोड़ा सीखा हो, तो अुन परसे वे अपना मार्ग निश्चित कर सकते हैं। अिसमें विचारदोष या दृष्टिदोष हो तो बताअिये और अपनी दृष्टि अधिक समझाअिये।"

अिस मांगको पूरा करनेका प्रयत्न करता हूं।

हमारे देशमें शिक्षाका अंग्रेजी काल आरंभ हुआ अुससे पहले अिस बारेमें परेशानी पैदा नहीं होती थी कि लड़का बड़ा होकर क्या धंधा करेगा। जैसे हिन्दू हो तो चोटी रखनी ही चाहिये और मुसलमान हो तो सुन्नत करानी ही चाहिये, यह चीज शंका अुठाये बिना बालक स्वीकार कर लेता था, वैसे ही वह निःशंक होकर यह मान लेता था कि बड़ा होने पर अुसे माता-पिताका धंधा ही करना है। वेदान्तका अध्ययन करे, भक्त बने, कविता रचे, बड़ी बड़ी हवेलियां बनवाये, पुल खड़े करे, रास्ते बनाये, चित्र खींचे, अपने धंधेमें कम प्रवीण हो या ज्यादा, थोड़ा यशस्वी हो या बहुत, फिर भी दरजीका लड़का जियेगा तब तक सियेगा

तो जरूर और वनियेका बेटा किसी प्रकारके पैतृक व्यापार-व्यवसायमें ही रहेगा। अिस प्रकार रोजगार-धन्धेके मामलेमें किसी प्रकारकी अनिश्चितता नहीं थी। गांधीजीकी भाषामें कहें तो 'वर्ण-व्यवस्था कायम थी'।

शिक्षाके अंग्रेजी कालमें यह स्थिति बदल गअी। अिसका कारण कुछ हद तक अंग्रेजी राज्य द्वारा अुत्पन्न की हुअी शिक्षा-प्रणाली है, कुछ हद तक अंग्रेजी राज्य द्वारा निर्माण किये हुअे नये धंधे हैं, और कुछ हद तक यंत्रयुगके कारण जगतके अुद्योग-धंधों और आर्थिक व्यवहारोंमें हुअी भारी क्रान्ति है।

अंग्रेजी कालसे पहलेकी शिक्षामें परम्परागत धंधोंकी शिक्षाकी व्यवस्था जरूर रही होगी, परन्तु संभव है व्यवस्थित ढंगसे साधारण शिक्षा देनेकी कोअी ठीक योजना न रही हो। यह अेक दोष था। यह दोष अंग्रेजी राज्यको खटका। अुसे राज्यके अलग-अलग विभाग चलानेके लिअे जिन जिन लोगोंकी जरूरत थी — नौकरीमें या स्वतंत्र धंधेवालोंके रूपमें — अुन्हें साधारण शिक्षाके अभावमें जुटानेमें कठिनाअियां मालूम हुअीं। अिसलिअे अुसने जो शिक्षा-प्रणाली तैयार की, वह पहले केवल साधारण शिक्षा देनेवाली और बादमें विभागोंका धंधा सिखानेवाली ही तैयार की। साधारण शिक्षाका अभाव हमारे प्राचीन जीवनका दोष था; और यह दोष अंग्रेजों द्वारा खड़ी की गअी शिक्षा-संस्थाओंमें पढ़े हुओं और अुनमें न पढ़े हुओंके बीचका भेद दिखाअी देने पर लोगोंके ध्यानमें आ गया। अिसलिअे अिस शिक्षाके प्रति लोगोंमें दिनोंदिन आकर्षण बढ़ता गया। यहां तक कि अिस शिक्षाके अन्य दोषोंकी ओर जब लोकनायकोंका ध्यान आकर्षित हुआ और वे राष्ट्रीय शिक्षाकी योजनायें सोचने लगे, तब भी अिसकी चिन्ता कभी दूर नहीं हुअी कि सामान्य शिक्षामें कोअी कमी न आने पाये। अुलटे, अैसी योजनायें सोची गअीं कि सरकारी शिक्षाकी कमी विशेष प्रकारकी सामान्य शिक्षासे ही पूरी की जाय। अंग्रेजीके बजाय मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना, हिन्दीकी राष्ट्रभाषाके रूपमें स्थापना करना, अितिहासका संशोधन करके अुसे अिस ढंगसे सिखाना कि वह राष्ट्रीय भावनाका पोषक बने, मातृभाषाका विकास करना, और थोड़े वर्षोंमें अधिक पढ़ाअी कराना — आदि आदि राष्ट्रीय शिक्षाके ध्येय

बने। अिस सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षाका सादा नाम 'साधारण शिक्षा' है। अिसका रोचक नाम है 'संस्कारिताकी शिक्षा'।

परन्तु जितने समय तक बालक या किशोर साधारण शिक्षा पाता हो, अुतने समयमें अुसे अपने पैतृक धंधे या जीविका देनेवाले किसी अन्य धंधेकी शिक्षा किस तरह मिले, अिसका विचार करना किसीको नहीं सूझा था। दोष तो धंधोंकी शिक्षामें भी आ गया था। अेक या अनेक कारणोंसे धंधे नष्ट होते जा रहे थे, कलाअें नाशको प्राप्त हो रही थीं और जनतामें अज्ञान बढ़ता जा रहा था। अुसमें भी प्रवाह सामान्य शिक्षाकी ओर ही मुड़ा। अिसलिअे धंधोंका जो थोड़ा-बहुत ज्ञान परम्परासे चला आ रहा था, अुसे भी लोग भूलने लगे; और कुछ तो बिलकुल स्मृतिका विषय ही बनकर रह गया। परिणाम यह हुआ कि आज हम यह मानने लगे हैं कि बीस वर्षकी अुम्रसे पहले धंधा तय करना संभव ही नहीं है। जीवनमें बीस वर्ष — कमसे कम पंद्रह वर्ष तो जरूर — सामान्य शिक्षा पानेके लिअे होने चाहिये। नतीजा यह हुआ कि बाप किसान होगा और अुसके लड़कोंमें से अेक वकील, अेक डॉक्टर, अेक अिंजीनियर, अेक व्यापारी, अेक आबकारीका दारोगा, अेक रसायनशास्त्री, अेक पाठशालाका शिक्षक और अेक सम्पादक या लेखक होगा; और अुनके लड़कोंमें भी अैसी ही विविधता हो सकती है।

अिस परिणामको लानेमें सरकारी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा, सनातनी और सुधारक, हिन्दू तथा मुसलमान — सभीने समान रूपमें हाथ बंटाया। किसीने रुकावट तो डाली ही नहीं। वर्ण अर्थात् धंधा — गांधीजीका यह अर्थ स्वीकार कर लिया जाय, तो सबने मिलकर समाजमें पूरी तरह वर्ण-संकरता और अव्यवस्था स्थापित कर दी। जन्मसे किसीका वर्ण तय नहीं होता; अितना ही नहीं, आदमी बीस-बाअीस वर्षका हो जाय, कदाचित् अेक-दो बच्चोंका बाप हो जाय, तो भी वह नहीं जानता कि अुसका वर्ण क्या है अथवा क्या होगा। जिसे अपना ही वर्ण जाननेकी कठिनाअी हो, वह बालकको भला कौनसे धंधेके आनुवंशिक संस्कार देगा?

यह है हमारी आजकी स्थिति। जिससे बाहर निकलनेकी जरूरत है। केवल आर्थिक दुर्दशाका हल ढूंढ़नेके लिअे ही नहीं, यद्यपि यह

कारण भी कोअी तुच्छ या गौण समझने जैसा नहीं है, परन्तु लोगोंके बौद्धिक और चारित्रिक विकासके लिअे भी। मनुष्य बी० अे० और अेम० अे० तक पढ़ाअी करे, पूर्ण तारुण्यमें आ चुका हो, तो भी यह न जान सके कि वह जीवनमें कौनसा धंधा कर सकता है, किस धंधेके अनुकूल अुसका शरीर और मन है, तो यह कैसी विषम और दया-जनक स्थिति है! यह भी संभव है कि वह कोअी धंधा जानता हो, परन्तु आर्थिक परिस्थिति अुसे बेकार रखती हो। परन्तु वह कुछ भी करनेके लिअे तैयार ही न हुआ हो और किसकी तैयारी करनी चाहिये अिसीकी परेशानी अुसे बीसवें वर्षमें भी रहे, तो यह केवल आर्थिक दुर्भाग्य ही नहीं, परन्तु मानसिक और नैतिक दुर्भाग्य भी है।

अिसका अेक ही अुपाय है। गांधीजीके शब्दोंमें वह यह है कि वर्ण-व्यवस्थाको हम फिर अुसके शुद्ध स्वरूपमें स्थापित करें। व्यवहारकी भाषामें अिसका अर्थ यह है कि कमसे कम अुम्रमें हम प्रत्येक बालकको यह निश्चय करा दें कि 'तुझे बड़ा होकर अमुक प्रकारके धंधेमें लगना है। तू कुटुम्बकी या अपनी शक्ति, अुमंग, परिश्रम और बुद्धिके अनुसार कितनी ही साधारण अर्थात् संस्कारिताकी शिक्षा प्राप्त कर, तुझसे हो सकें अुतने कला-कौशल संपादन कर, परन्तु यह न भूलना कि तुझे अमुक धंधा करना है और अुसके लिअे तुझे छुटपनसे तैयारी करनी चाहिये। अिस धंधेमें तुझे अपना पुरुषार्थ और भाग्य साथ दे तो तू अूंचीसे अूंची श्रेणी पर चढ़ना; वे साथ न दें तो सामान्य कक्षामें रहना। परन्तु यह निश्चय रखना कि तुझे धंधा तो यही करना है।'

यह निश्चय करनेमें माता-पिता तथा शिक्षक बालकके आनुवंशिक संस्कार, स्वभाव, जन्मजात सिद्धियां, श्रमप्राप्त सिद्धियां, माता-पिताकी आर्थिक शक्ति वगैराका जरूर विचार कर लें। परन्तु यह विचार करनेमें वर्षोंका समय न लगना चाहिये। जितना जल्दी निश्चय कराया जा सके अुतना अच्छा। और, अिसमें आम तौर पर कौटुम्बिक धंधेको पसंद करनेका रुख होना चाहिये। अपवादरूपमें ही बालकको माता-पितासे भिन्न प्रकारके धंधेमें पड़नेका अवसर पैदा होना चाहिये।

२

आजके समयमें भले ही अठारह नहीं, अठारह सौ प्रकारके धंधे हो गये हैं और अुनमें दिनोंदिन वृद्धि होती ही जा रही है, फिर भी अिन सब धंधोंकी जांच करें तो संभव है सारे धंधोंको आठ-दस गोत्रोंमें बांटा जा सकता है। अुदाहरणार्थ, यह कहा जा सकता है कि बढ़ओी, लुहार, राज, टर्नर, फिटर, रिपेरर, सिविल अिंजीनियर, मेकेनिकल अिंजीनियर, बिजलीका अिंजीनियर, विमानका अिंजीनियर, अेंजिन बनानेवाला वगैरा लोगोंका गोत्र अेक ही है। हम अिन्हें मिस्त्री अथवा कारीगरके रूपमें जानते हैं। अिनमें से भले ही कोअी आठ आने रोज कमानेवाला हो, और कोअी अस्सी रुपये लानेवाला हो। यहां हम अिसमें जो अन्याय हो अुसे मिटानेका विचार नहीं कर रहे हैं। धंधेका प्रारंभिक निश्चय करानेका अर्थ है कम-से-कम बालकके धंधेके गोत्रका निश्चय कराना। फिर वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता जायगा, त्यों-त्यों अुसकी शाखाओं और अुपशाखाओंका निर्णय होता जायगा।

अिस प्रकार यदि बालक अपने भावी धंधेके बारेमें निश्चित हो जाय, तो अिससे केवल अुसीको सीधा मार्ग ढूंढ़नेमें सहायता नहीं होगी, परन्तु हमारी शिक्षा-प्रवृत्तियां भी अधिक निश्चित मार्ग ग्रहण करेंगी। साधारण शिक्षा भी सब मनुष्योंके लिअे साधारण संस्कारोंकी ही शिक्षा नहीं होती। अेक खास मर्यादाके बाद वकीलके धंधेके लिअे तैयार होनेवालेकी सामान्य शिक्षा अेक प्रकारकी होगी, डॉक्टरके लिअे दूसरी तरहकी होगी; किसानोंकी शालामें सामान्य शिक्षाकी अेक दृष्टि होगी और मजदूरोंकी शालामें दूसरी होगी। अिस प्रकार जिस गोत्रके धंधेके लिअे शाला होगी, अुसकी सामान्य शिक्षामें भी बिलकुल आरंभसे ही कुछ न कुछ विशेषता होगी।

अर्थात्, अिसमें यह सूचना भी है कि केवल सामान्य शिक्षा — संस्कारिता — की शाला त्रुटिपूर्ण संस्था है। अिसका परिणाम यह हुआ है कि जैसे-जैसे विद्यार्थी बड़ा होता है वैसे-वैसे कौनसा धंधा किया जाय अिसके विषयमें वह केवल संशयात्मा ही नहीं बनता, बल्कि बापदादेका

धंधा भी बिलकुल भूल जाता है और अुसकी व्यापक शिक्षा अुसके पैतृक धंधेके विकासके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेके बजाय अुलटे अुस धंधेके लिअे अुसे अयोग्य ही बनाती है।

धंधेका निश्चय और अुसकी शिक्षाकी बचपनसे ही व्यवस्था होनेके सिवा प्रत्येक बालकके लिअे अेक अितर अुद्योग — अतिरिक्त धंधे — की भी जरूरत मानी जायगी। अितर अुद्योगमें दो लक्षण होने चाहिये: मुख्य धंधेके साथ आरामके समय रुपयेके लिअे नहीं, परन्तु केवल शौकके तौर पर भी वह प्रिय लगे। आवश्यकता पड़ने पर, अथवा अैसी अनुकूलता मिल जाने पर, अुसे रोजी देनेवाला भी बनाया जा सके। अिसके अलावा, कभी कभी अेक तीसरा लक्षण भी अुसका हो सकता है। वह यह कि अुसका ज्ञान मुख्य धंधेको अलंकृत — कलामय — बनानेमें अुपयोगी हो। अिस अितर अुद्योगके चुनावमें बालकके व्यक्तित्वको — अुसके मनको अनुकूल लगनेवाली प्रवृत्ति ढूंढ़नेका पूरा अवकाश रहता है। (अर्थात् मैं यहां अितर अुद्योगके तौर पर सहायक अुद्योग अर्थात् कातने-पींजने जैसे अेक धंधेके साथ चलनेवाले दूसरे धंधेका विचार नहीं कर रहा हूं। अुसका समावेश तो मुख्य अुद्योगमें ही होगा।)

प्रत्येक मनुष्य अपने मनके अनुकूल प्रवृत्तिमें ही रातदिन लगा रह सके और अुसके द्वारा अपनी आजीविका भी कमा सके तो कितना अच्छा हो! परन्तु जिस प्रकारके संसारमें हम रहते हैं, अुसमें अैसी अनुकूलता सबको प्राप्त नहीं होती; बहुत कम लोगोंको प्राप्त होती है। अिसलिअे अुदास होने, निराश होने और बड़बड़ाहट करनेसे कुछ नहीं होगा। अिसी-लिअे धर्म मनोनुकूल प्रवृत्तियोंका मार्ग नहीं माना गया, परन्तु कर्तव्यका मार्ग माना गया है। अतः मनोनुकूलताकी अपेक्षा कर्तव्यको हम पहला आदर देना सीखें — यह पहला धर्म है। और मनोनुकूल प्रवृत्तियोंको आजीविकाके लिअे नहीं परन्तु शौकके लिअे, निवृत्तिके लिअे, वैयक्तिक विकासके लिअे रखें — यह दूसरा धर्म है।

हरिजनबन्धु, १२–१–'३६

शिक्षाका विकास

दूसरा भाग

सेवाग्राम

१

शिक्षा और श्रम

शिक्षामें अुद्योगका स्थान अवश्य होना चाहिये, अिस वारेमें अब शिक्षाशास्त्रियोंमें शायद ही कोअी मतभेद है। परन्तु अुस दिशामें आगे कैसे बढ़ा जाय, यह अभी तक बहुत स्पष्ट नहीं हुआ है। 'अुद्योग द्वारा शिक्षा' का अेक अर्थ मैं यहां पेश करता हूं।

मैं मानता हूं कि प्रत्येक शालाके साथ अुद्योग-विभाग होना चाहिये; और अिसके विपरीत प्रत्येक अुद्योग-संस्थाके साथ अुसमें काम करनेवालोंके लिअे शालाकी योजना होनी चाहिये। बालक शालामें पढ़ें और अुसके अुद्योग-विभागमें काम करें और अुद्योग भी सीखें। बड़े लोग अुद्योग करें और साथ ही अुद्योग-संस्थाओंकी शालाओंमें पढ़ें। अिस प्रकार अेकके साथ दूसरी संस्था होनी चाहिये।

दुनियामें मनुष्य-जातिके बड़े भागको मेहनत-मशक्कतका कठिन जीवन विताना पड़ता है; किसी न किसी प्रकारका स्नायुश्रमवाला अुद्योग करके ही निर्वाह करना पड़ता है। और जिन्हें अैसा नहीं करना पड़ता अुनके भी विकासके लिअे अुनकी स्नायुश्रमवाले अर्थात् मेहनतके काम करनेकी शक्तिका विकास करनेकी जरूरत है। अिसलिअे शालाओंकी योजना अिस ढंगसे होनी चाहिये कि अुनका पाठ्यक्रम पूरा करनेवाला युवक अथवा युवती मजदूरी (स्नायुश्रम) करनेकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक योग्यता रखे। बड़ी अुम्रमें अैसा श्रमपूर्ण अुद्योग न करना पड़े और अिसलिअे वह न करे तो कोअी हर्ज नहीं। परन्तु यह नहीं होना चाहिये कि जरूरत पड़ने पर भी अपनी शिक्षाके कारण (बल्कि शिक्षाकी न्यूनताके कारण) वह अैसा अुद्योग करनेके लिअे शरीरसे, मनसे या बुद्धिसे अयोग्य साबित हो।

स्नायुश्रम करानेवाली मजदूरीके तीन वर्ग किये जा सकते हैं:

१. जिन कामोंमें यंत्रवत् अेक ही तरहका (monotonous) स्नायुश्रम करना हो, अैसे जड़ मजदूरीवाले काम।

२. जिन कामोंमें ध्यानपूर्वक, थोड़ी-बहुत तालीमके साथ तथा विविध प्रकारका स्नायुश्रम करना हो, अैसे कारीगरी अथवा कुशल मजदूरीवाले काम।

३. जिन कामोंमें हिसाबके साथ, शास्त्रज्ञानपूर्वक स्नायु-श्रम करना हो, अैसे मिस्त्रीगिरी या अिंजीनियरीके काम।

मनुष्योंमें मेहनत-मजदूरीके लिअे जो अरुचि बढ़ गअी है, अुसके फलस्वरूप जैसे मजदूरीके कामोंकी अपेक्षा बैठकके अथवा बुद्धिके कामोंके लिअे अधिक मोह होता है, वैसे ही मजदूरीके धंधोंमें भी अूपरके विभागोंमें अेकसे दूसरेकी कीमत ज्यादा समझी जाती है।

परन्तु मानव-जीवनका विचार करने पर जान पड़ता है कि केवल जड़ परिश्रमके काम किये बिना जीवन-निर्वाह हो ही नहीं सकता। अरुचिसे करो, अुमंगके साथ करो या कर्तव्यबुद्धिसे हर्ष-शोक-रहित होकर करो, वे करने तो पड़ते ही हैं। अुलटे जैसे-जैसे यंत्रोंमें सुधार होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे कुशलतावाले कामोंके लिअे भी यंत्र बनाये जा रहे हैं, और वे केवल जड़ मजदूरीके काम बनते जा रहे हैं। मतलब यह है कि अुद्योगोंकी क्रियाअें यंत्रोंसे हों या हाथसे, परन्तु जड़ स्नायुश्रमसे सबको मुक्ति मिलना संभव नहीं। अिसलिअे अैसे कामोंके प्रति मनमें अरुचि बढ़ाना, अुन्हें करनेकी आदत छोड़ देना तथा अुन्हें करनेमें असमर्थ होना मानव-जीवनको टिकाये रखनेकी अेक अनिवार्य शर्त न पालनेके बराबर है। अिससे मानव-जीवनको सजा मिले बिना रह ही नहीं सकती। जो अिससे भागते हैं अुनका स्नायु-विकास कम होता है और अुनमें पीढ़ी दर पीढ़ी अपंगता आती जाती है। अिसमें दोनों तरहसे हानि ही होती है। अिस बातका प्रमाण हमारे पीढ़ी दर पीढ़ी बैठकके काम करनेवालों और 'पढ़े-लिखों' के शरीर देते हैं।

अिसलिअे मेरी दृष्टिमें अुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ यह है कि केवल मजदूरीके अेक ही तरहके और श्रमपूर्ण कामोंके लिअे शरीरकी शक्ति बढ़ाअी जाय और कायम रखी जाय तथा अैसे कामोंके प्रति अरुचि अुत्पन्न करनेवाले संस्कारों और परिस्थितियोंको मिटाया जाय। अिसके

लिअे विद्यार्थियोंको अैसे कामोंमें भी लगाना चाहिये, जिनसे अुन्हें जड़ श्रम करनेकी आदत रहे।

अिसका अर्थ यह नहीं कि कारीगरी और अिंजीनियरीकी शिक्षाको गौण स्थान देना है। अैसा किया जाय तो स्नायुश्रमवाले अुद्योग करनेकी बौद्धिक योग्यता नहीं बढ़ेगी। और यह भी समाजके लिअे हानिकारक ही होगा।

जिस प्रकार शालाओंकी योजना अैसी होनी चाहिये, जिसमें विद्यार्थी काफी जड़ मजदूरी करते हों, कारीगरी सीखते हों और साथ ही पाठ भी पढ़ते हों। अिन संस्थाओंके अुच्च पाठ्यक्रममें अिंजीनियरीकी शिक्षा आ जायगी।

अैसे अुच्च पाठ्यक्रमके लिअे विशेष शालाओंकी अपेक्षा अुद्योग-संस्थायें भिन्न भिन्न धंधोंके अधिक सुविधापूर्ण स्थान हो सकती हैं। यह सिद्धान्तकी अपेक्षा सुविधा और किफायतका विषय है।

परन्तु *औद्योगिक शिक्षाके अेक दो आवश्यक लक्षणोंके प्रति ध्यान* खींचनेकी जरूरत है।

अेक तो 'अुद्योग' को बिलकुल शुरूसे अुसके शुद्ध अर्थमें ही समझना चाहिये। अर्थात् छोटी या बड़ी जो भी वस्तु बालक बनाये, वह जीवनमें किसी न किसी अुपयोगमें आनेवाली वस्तु हो या अुसका कोअी भाग हो। खिलौना हो तो भी सच्चा खिलौना हो, केवल बनानेवाले बालकके विनोदके लिअे बनाया हुआ न हो। वह जो कुछ बना रहा है अुसका कुछ न कुछ अुपयोग होगा, अिस ज्ञानके साथ बालककी अुसमें प्रवृत्ति और योजना होनी चाहिये। तभी यह कहा जा सकता है कि बालक 'अुद्योग' करता है।

दूसरे, व्यायाम वगैरा शारीरिक शिक्षाको अुद्योगके अेवजमें रखनेसे काम नहीं चलेगा। व्यायाम, खेलकूद, कवायद वगैराका क्षेत्र और प्रयोजन स्वतंत्र है। वे आवश्यक हैं, परन्तु वे औद्योगिक शरीर-श्रमकी जगह नहीं ले सकते।

गांधीजीका सुझाव है कि अिन शालाओंका खर्च अुनके विद्यार्थियोंके अुद्योगसे ही निकलना चाहिये। अैसा न हो सके तो अन्य दो सूचनायें

ये हैं कि विद्यार्थियोंका अपना खर्च अुनकी मेहनतसे निकलना चाहिये अथवा कम-से-कम शालाओंका अुद्योग-विभाग स्वावलंबी होना चाहिये। मुझे स्वीकार करना चाहिये कि अैसी अेकाध शर्तका पालन करके ही शालाकी योजना करनेका मार्ग मुझे अभी तक स्पष्ट दिखाअी नहीं देता। अितना कहा जा सकता है कि वर्तमान जन-मानस और गरीबीकी दृष्टिसे विद्यार्थीके श्रमका मेहनताना फीसके खातेमें जमा होनेकी अपेक्षा अुसे कमाअीके रूपमें मिलनेकी व्यवस्था करना अिन तीनोंमें सबसे अधिक संतोष-जनक और परिणामकारक होगा। परन्तु साथ ही जिस विद्याकी कीमत न चुकानी पड़ती हो वह बहुत सफल नहीं होती। अिसलिअे मैं बीचका मार्ग सुझाता हूं: विद्यार्थियोंकी मजदूरीका अेक हिस्सा फीस माना जाय और बाकीका अुनकी कमाअी।

अुद्योगसे शालाका सारा खर्च निकले या न निकले, यह मुख्य प्रश्न नहीं है। क्योंकि किसी भी हालतमें हमें शिक्षाका प्रचार तो करना ही चाहिये। अिसके लिअे दूसरे विभागोंसे अेक अेक पाअी बचानेको हम तैयार होंगे। शिक्षाके खर्चके प्रति हमें भविष्यमें आय देनेवाली पूंजीकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। अब तक तो केवल पुस्तकीय शिक्षाके खर्चको भी हम अच्छी पूंजी समझते आये हैं। तो फिर औद्योगिक शिक्षाकी तो हमें अधिक अूंची कीमत समझनी चाहिये।

असल प्रश्न खर्चका नहीं, परन्तु कुशल शिक्षाका है। गांधीजी कहते हैं कि कुशलता सिर्फ शिक्षाशास्त्रकी दृष्टिसे ही नहीं, बल्कि अर्थशास्त्रकी और शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे भी होनी चाहिये। अिसमें दोष निकालने जैसी कोअी बात दिखाअी नहीं देती। कुछ व्यक्तिगत शालाओंको हम आर्थिक दृष्टिसे कुशल न बना सकें, फिर भी यदि अिस बात पर हमारा ध्यान रहेगा तो हम कम-से-कम नुकसानको कम करनेमें तथा अमुक प्रकारकी शालाओंको स्वावलंबी बनानेमें तो सफल हो ही सकेंगे। और यह भी न हो तो अिससे हमारे साधन बढ़ेंगे, घटेंगे नहीं। शिक्षाशास्त्रकी दृष्टिसे निकम्मी शिक्षासे सन्तोष मान लेना गांधीजीके स्वभावमें नहीं है; और यदि मान लिया जाय कि आर्थिक लाभ पर बहुत नजर रखनेसे शिक्षामें निकम्मापन आ रहा है, तो वे अैसे लाभको

छोड़नेमें डरनेवाले नहीं हैं। यह तो हम जानते हैं कि कत्तिनोंकी मजदूरीकी दरोंसे असंतुष्ट होकर अुसे बढ़ानेमें और अिस तरह महंगी खादीको और महंगी करके चरखा-संघको जोखिममें डालनेमें अुन्हें कोअी संकोच नहीं हुआ!

अिसलिअे, अिस समस्याका हल ढूंढ़नेका मार्ग हमारी विचार-शक्तिको यह बतानेकी दिशामें मोड़ना नहीं है कि किस प्रकार गांधीजीकी दलीलोंका खंडन किया जाय और गांधीजी जो चाहते हैं वह असंभव है; परन्तु यह बतानेकी दिशामें अुसे मोड़ना है कि हम अुनकी कल्पनाको किस प्रकार अधिकसे अधिक सफल बना सकते हैं।

हरिजनबन्धु, २४–१०–'३७

२

वर्धा-पद्धति *

१. पूज्य गांधीजी द्वारा प्रतिपादित शिक्षाकी योजनाको अिस लेखमें 'वर्धा-पद्धति' कहा गया है।

२. यह योजना बताती है कि अेक बालकको आगे चलकर मनुष्य-परिवारमें अेक जिम्मेवार कुटुम्बी जनका स्थान लेने लायक बनानेके लिअे हम किस प्रकार अहिंसाका प्रयोग कर सकते हैं।

३. अिस योजनाके संबंधमें व्यापक रूपसे यह दावा किया गया है कि यदि हमें मानव-समाजमें खूनी और लड़ाकू वृत्तिके स्थान पर शान्ति-स्थापक वृत्ति निर्माण करनी है, तो आवश्यक फेरफारोंके साथ यह तमाम देशोंमें और सभी जातियोंमें काम दे सकती है। हिन्दुस्तानके लिअे तो आज यही अेक योग्य पद्धति है।

४. अिस पद्धतिका ध्येय यह है कि बच्चेके अन्दर भले-बुरेका खयाल पैदा होते ही अुसे सामाजिक जीवनके कर्तव्योंमें भाग लेना शुरू करा देना चाहिये।

* अिस लेखको पहले 'सेगांव-पद्धति' शीर्षक दिया गया था, परन्तु अब 'वर्धा-पद्धति' नाम रूढ़ हो जानेसे शीर्षक बदल दिया गया है।

५. अिस पद्धतिका मध्यबिन्दु होगा कोअी अुत्पादक पेशा। आम तौर पर हर किस्मकी शिक्षा अिस अुद्योगके जरिये और अिसके साथ गूंथ दी जानी चाहिये। अुदाहरणार्थ, अितिहास, भूगोल, गणित, भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र अेवं साहित्य आदि सब विषयोंकी शिक्षा अिस अुद्योगके साथ ग्रथित करके अिसके साथ-साथ दी जाय। अिन विषयोंकी अन्य बातें छोड़ी नहीं जायंगी। पर ग्रथित शिक्षा पर अधिक जोर दिया जायगा।

६. अुद्योग भी शिक्षाका केवल साधन या वाहन नहीं होगा। बल्कि जिस हद तक वह मानव-जीवनमें अनिवार्यतः आवश्यक है, अुस हद तक वह हमारी शिक्षाका साध्य भी होगा। अर्थात् अिस शिक्षाका अेक ध्येय यह भी होगा कि अिसके द्वारा हर तरहके शरीर-श्रमके प्रति, चाहे वह भंगीका ही काम क्यों न हो, बालकमें आदर-भाव अुत्पन्न हो; और अेक अैसी कर्तव्य-निष्ठा अुत्पन्न हो कि अुसे अपनी रोजी अीमानदारीके साथ शरीर-श्रम करके ही प्राप्त करनी चाहिये।

७. अिस पद्धतिके अनुसार पढ़ानेवाले शिक्षकका लक्ष्य यह होगा कि विद्यार्थी जो भी अुद्योग सीखे अुसीके जरिये अुसकी तमाम शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियां प्रकट हों।

८. अिसमें समाज-शास्त्र तथा आरोग्य-शास्त्र केवल शिक्षण-वर्गके विषयोंके रूपमें ही न पढ़ाये जायं, बल्कि मूक प्राणियों सहित सारे गांवकी भिन्न-भिन्न रीतिसे सेवा करनेके लिअे सामाजिक तथा व्यक्तिगत कार्यक्रम बनाकर अुनके द्वारा अिन विषयोंकी प्रत्यक्ष शिक्षा दी जाय। अिस नवीन विद्यालयकी हस्ती अेक दीपस्तंभकी तरह हो, जो समाज पर चारों तरफसे संस्कृतिका प्रकाश फैलाता रहे।

९. संक्षेपमें कहें तो "हाथ और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा यह पद्धति व्यक्तिकी बुद्धि और हृदयको सुसंस्कृत करे और विद्यालयके जरिये अुसे समाज तथा परमात्मा तक पहुंचावे।"

१०. शालाके सामुदायिक जीवनमें रहकर रोज तीन या चार घंटे तक सह-परिश्रम करना लड़के-लड़कियोंके लिअे आरोग्यदायक और अुत्तम रीतिसे शिक्षाप्रद भी है। "मनुष्य चाहे किसी भी श्रेणीका हो, विज्ञान

तथा अुद्योगके विकासके लिअे और सारे समाजके सामूहिक लाभकी दृष्टिसे भी अुसे अैसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वह विज्ञानकी पूरी शिक्षाके साथ-साथ दस्तकारीकी शिक्षाको जोड़ सके।" (क्रोपाटकिन)

११. मौजूदा शिक्षा-पद्धतिमें तो अधिकांश विद्यार्थी अपनी कॉलेजकी पढ़ाअी खतम कर लेने पर भी यह निश्चय नहीं कर पाते कि अब आगे वे क्या काम करेंगे? हम अकसर देखते हैं कि अैसे बहुतसे लड़के और लड़कियां, जिनके घरकी स्थिति बहुत ज्यादा खराब नहीं होती, प्राथमिक शालाओंसे माध्यमिक शालाओंमें और वहांसे कॉलिजोंमें भारी खर्च अुठाकर जाते रहते हैं। अिसका कारण यह नहीं बताया जा सकता कि वे अिन शाला-कॉलिजोंमें सिर्फ अुन शुभ संस्कारोंको पाने ही जाते हैं, जिनका कि ये संस्थाअें दावा करती हैं। वास्तवमें तो वे अिसलिअे पढ़ते चले जाते हैं कि अुन्हें कुछ सूझता ही नहीं कि अिसके अलावा वे और क्या कर सकते हैं। आजीविका कमानेके लिअे अुपयुक्त धंधेके चुनावकी घड़ीको जहां तक बन पड़ता है वे आगे ढकेलते जाते हैं और अेकके बाद अेक अिम्तिहानोंमें बैठते चले जाते हैं। जिस स्त्री अथवा पुरुषको अपने जीवनके प्रारंभिक बीस-पचीस साल अिस तरह निरुद्देश्य बिताने पड़ते हैं, अुनके अन्दर दीर्घसूत्रता, संशयवृत्ति, अनिश्चितता और अपने-आप किसी निर्णय पर पहुंचनेकी अक्षमता आये बगैर रह ही नहीं सकती। वर्धा-पद्धतिका अुद्देश्य यह है कि प्रत्येक बालक या बालिकाको वह जल्दी-से-जल्दी अिस बातका निर्णय करा दे कि अुसे अपने भावी जीवनमें कौनसा व्यवसाय करना होगा, और अुसे किसी अेक धंधेकी कम-से-कम अितनी तालीम भी जरूर दे दे, जिससे वह जीवनके योग्य धारण-पोषणके लिअे आवश्यक न्यूनतम कमाअी जरूर कर सके।

१२. साक्षरता — यानी लेखन-वाचन द्वारा अनेक विषयोंकी जानकारी तथा तार्किक अथवा अैसी ही अन्य चर्चाओंको समझनेकी शक्ति — को वर्धा-पद्धतिमें न तो ज्ञान माना गया है और न ज्ञानका साधन ही। बल्कि अुसमें तो अिसे ज्ञान अथवा अलंकृत अज्ञानको प्रकट करनेकी सांकेतिक पद्धतिमात्र माना गया है। अिन संकेतोंका ज्ञान तो तब अुपयोगी और

जरूरी हो सकता है जब ज्ञानकी जड़ें हरी हों। वर्धा-पद्धतिका अुद्देश्य यह है कि अिन जड़ोंको हरा-भरा रखा जाय। अिसके साधन हैं प्रत्यक्ष कार्य, अवलोकन, अनुभव, प्रयोग और सेवा। अिनके बगैर कोरी किताबी पढ़ाअी विद्यार्थीके हृदय और बुद्धिके विकासमें विघ्नरूप सिद्ध होती है और अुसके शरीरको भी बिगाड़ती है।

१३. वर्धा-पद्धतिके अनुसार जो पढ़ाअी होगी अुसमें विद्यार्थीको पढ़ाअीकी बुनियादके रूपमें जो सिखाया जायगा, अुसमें नीचे लिखे विषयोंका समावेश होना जरूरी है — मातृभाषाका अच्छा ज्ञान, मातृभाषाके साहित्यका साधारण परिचय, देशकी राष्ट्रभाषाका व्यावहारिक ज्ञान, गणित, अितिहास, भूगोल, भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र, आलेखन, संगीत, कवायद, खेल-व्यायाम वगैरा। अिन विषयोंका साधारण ज्ञान होना चाहिये और अिनके सिवा किसी अेक धंधेमें अितनी कुशलता भी होनी चाहिये, जो साधारण शक्तिवाले विद्यार्थीको मामूली कमाअी करनेकी शक्ति दे सके; और अगर वह होशियार तथा परिश्रमी भी हो तो अुसे अिस लायक बना दे कि वह साहित्यिक अथवा औद्योगिक क्षेत्रमें अधिक शिक्षा पानेका पात्र बन जाय। अिस 'बुनियादी तालीम' में नीचे लिखे विषयोंका समावेश आवश्यक नहीं है — अंग्रेजी अथवा अैसे तमाम विषय जिनकी साधारणतया व्यवहारमें जरूरत नहीं होती, अथवा बुद्धिके विकासके लिअे जो अनिवार्यतः आवश्यक नहीं होते, या खुद-ब-खुद अपनी शिक्षाको आगे बढ़ानेकी पूर्व-तैयारीके रूपमें जिनकी जरूरत नहीं होती।

१४. 'बुनियादी तालीम' का अध्ययन-क्रम सात वर्षसे कमका नहीं होना चाहिये। हां, अगर जरूरत हो तो समय बढ़ाया जरूर जा सकता है। अगर आगे लिखे अनुसार शालायें स्वावलंबी हो सकीं, और विद्यार्थियोंके पालकोंको भी अुनसे कुछ लाभ मिल सका, तो बच्चोंको अधिक समय तक पढ़ानेमें अुनके पालकोंको कोअी कठिनाअी नहीं होगी।

१५. वर्धा-पद्धतिके संबंधमें राज्यके कर्तव्यों तथा जीवन-वेतनकी कम-से-कम मर्यादाके विषयमें कुछ सिद्धांत निश्चित कर लिये गये हैं। वे नीचे दिये जा रहे हैं।

१६. जो स्त्री या पुरुष मेहनत करनेके लिअे तैयार हों और जिन्हें सरकार पढ़नेके लिअे मजबूर करे, सरकारका कर्तव्य है कि अुन्हें काम दे और अिस कामके बदलेमें कम-से-कम अितना वेतन तो जरूर दे, जिससे अुनका ठीक तरहसे निर्वाह हो जाय। जिस सरकारमें अितना करनेकी शक्ति नहीं है, वह 'राज्य' कहलानेकी पात्रता नहीं रखती।

१७. अैसा अनुमान लगाया गया है कि आजकलके बाजार-भावोंके अनुसार हिन्दुस्तानमें योग्य निर्वाहके लिअे पूरा काम करनेवाले आदमीका मेहनताना फी घंटा अेक आनेसे कम नहीं पड़ना चाहिये। 'पूरा काम' से यहां अुतना काम समझा जाय, जितना कि (तालीम पाया हुआ) अेक साधारण आदमी घंटेभरमें कर सके।

१८. हमारे देशकी वर्तमान शासन-पद्धति तथा समाजकी रचना भी अिस कसौटी पर खरी नहीं अुतरती। अिसलिअे हमारे देशकी सरकारें 'राज्य' कहलानेकी पात्रता नहीं रखतीं। अिस खामीका कारण चाहे विदेशी सत्ता हो या खुद हम ही हों, अुसे दूर करना ही पड़ेगा। वर्धा-पद्धतिका दावा है कि अगर अुस पर साहसपूर्वक और सच्चे दिलसे अमल किया जाय, तो राज्यमें तथा समाजमें आवश्यक फेरफार करनेके साधन और शक्ति वह हमें देगी।

१९. अिसके लिअे राज्यको कम-से-कम अेक अुद्योगको अपना लेना होगा; यह अुद्योग अैसा हो कि जिसमें वह लगभग असंख्य आदमियोंको काम दे सके और फिर भी अुसे खुद घाटा न अुठाना पड़े।

२० हिन्दुस्तानके लिअे तो हाथ-कताअी और हाथ-बुनाअी ही अेक अैसा धंधा है। अिसमें कच्चा माल, थोड़ी पूंजीसे काम चल निकलना और अपार मनुष्य-बल आदि वे सारी स्वाभाविक अनुकूलताअें हैं, जो अुसे देशका खास अुद्योग बना देनेके लिअे आवश्यक हैं। फिर अिसके पीछे लंबी परंपरा भी तो है। क्योंकि सैकड़ों वर्षों तक हिन्दुस्तानने ही संसारको सूतसे ढंका है।

२१. यों तो पहले ही कातनेकी मजदूरी असंतोषकारक थी। पर आगे चलकर वह कलोंके बने मालकी प्रतिस्पर्धामें और भी अधिक घट

गअी। राज्य तथा जनताको चाहिये कि वे अिस प्रतिस्पर्धाको मिटा दें। और जब तक वे अैसा नहीं कर सकते, खादी-अुद्योगको जिलानेके लिअे प्रतिस्पर्धाकी किसी प्रकारकी परवाह किये बगैर वे कातनेवालेको अितनी मजदूरी देना शुरू कर दें, जिससे अुसका अच्छी तरह निर्वाह हो सके।

२२. अिसी तरह सभी प्रकारकी मजदूरीकी दर बढ़ानेकी जरूरत है, जिससे कि मजदूरोंका धारण-पोषण पूरी तरहसे हो सके। सरकारको चाहिये कि वह अैसा करनेकी शक्ति प्राप्त करे। जनताका भी यह कर्तव्य है कि अिसमें सरकारकी मदद करे, जिससे कि वह अिस लायक बन जाय।

२३. अूपर बताअी हुअी अल्पतम मजदूरी बड़ी अुम्रके आदमीके लिअे है। वर्धा-पद्धतिकी शालाके विद्यार्थीके लिअे अुसका दर फी घंटा आध आना पड़ता है।

२४. हम रोजाना कामके तीन घंटे मान लें और यह मान लें कि सालमें नौ महीने शाला लगेगी, तो वर्धा-पद्धतिकी शालाकी कुशलताकी कसौटी यह होगी कि सात दर्जों (हर दर्जेमें २५ विद्यार्थी) और लगभग आठ-नौ शिक्षकोंवाली शालाकी आय अितनी हो जानी चाहिये कि अुप-र्युक्त हिसाबसे अगर मजदूरी आंकी जाय, तो अुसमें से शिक्षकोंका वेतन निकल आये। शिक्षकका वेतन कम-से-कम २५ रु० मासिक मान लिया गया है। (वह २० रु० मासिकसे कम तो किसी हालतमें न हो।)

२५. विद्यार्थियोंकी कार्यशक्ति, साधनों तथा शिक्षा-पद्धतिमें अितने सुधार हो जाने चाहिये कि कुशलताकी अुपर्युक्त कसौटी पर तो कम-से-कम प्रत्येक शाला खरी अुतर जाय।

२६. अुपर्युक्त दरसे शालाके विद्यार्थीकी मजदूरी आंकते हुअे तथा गांवोंमें खानगी कारीगरोंको आज जो मजदूरी मिलती है अुसका विचार करते हुअे यह तो भय नहीं रहता कि खानगी कारीगरोंके मालके साथ शालाओंके मालकी प्रतिस्पर्धा होगी। गांवोंके कारीगरोंकी मजदूरीकी दरोंको अिस सीमा तक आनेमें जरा समय लगेगा और तब तक तो गांवोंके कारीगरोंकी कार्यशक्ति और साधनोंमें भी अितने ही सुधार हो चुके

होंगे। अिसलिअे यहां प्रतिस्पर्धाका भय रखनेकी कोअी जरूरत ही नहीं है।

२७. फिलहाल तो शालाको अुपर्युक्त मजदूरी चुकानेका आश्वासन सरकारको दे ही देना चाहिये। कम-से-कम चरखा-संघ तथा ग्रामोद्योग-संघ द्वारा मंजूर की गअी दरें तो जरूर देनी चाहिये। और जब तक विद्यार्थीको फी घंटा आध आना मजदूरी नहीं पड़ जाती, ये संस्थाअें ज्यों-ज्यों अपने यहां मजदूरीकी दरें बढ़ाती जायं त्यों-त्यों शालाओंकी मजदूरीकी दरें भी बढ़ती जानी चाहिये। अिस पर शायद यह आक्षेप किया जायगा कि यह तो शालाको प्रत्यक्ष रूपसे सहायता करनेकी बात हुअी। और अुससे मौजूदा बाजार-भावोंको देखते हुअे सरकार पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ पड़ेगा। मगर कारीगरोंकी कार्यशक्ति और साधनोंमें भी सुधारके लिअे अितनी गुंजाअिश है कि हम यह आशा रख सकते हैं कि पदार्थोंकी कीमतें अधिक बढ़ाये बगैर भी पांच वर्षके अंदर शालाका तथा खानगी (तालीम पाया हुआ) प्रत्येक कारीगर हकके साथ जीवन-वेतनकी न्यूनतम मर्यादा तक पहुंचनेकी शक्ति प्राप्त कर लेगा।

२८. यह जो सिद्धान्त कहा गया है कि अूपर बताये अर्थमें प्रत्येक शालाको स्वाश्रयी हो जाना चाहिये, अुसमें केवल आर्थिक दृष्टि नहीं है। बल्कि अिसे शालाके औद्योगिक विभागकी कुशलताकी व्यावहारिक कसौटीके रूपमें रखा गया है।

२९. अभी तो खादी-अुद्योग द्वारा 'बुनियादी तालीम' देनेकी दृष्टिसे वर्धा-पद्धतिका सांगोपांग विचार किया गया है। अिनसे कोअी यह न समझ ले कि अिसमें हम अन्य अुद्योगोंको प्रोत्साहन नहीं देना चाहते; बल्कि बात यह है कि दूसरे अुद्योगोंके संबंधमें योजना बनाने और अनुमान निकालनेके लिअे अभी हमारे पास आवश्यक सामग्री नहीं है।

३०. वर्धा-पद्धतिके सिद्धांत आवश्यक फेरफारोंके साथ अुससे बादकी शिक्षामें भी लागू करने चाहिये। हर प्रकारकी शिक्षामें स्वाश्रय को स्थान होना ही चाहिये। अुच्च शिक्षामें संस्थाका खर्च या तो विद्यार्थियोंकी मेहनतसे निकल आना चाहिये या अुनकी फीससे। और अगर फीस न

देनी पड़ती हो, तो विद्यार्थी अपना खर्च शालामें या बाहर की गजी मजदूरीसे निकाल लें।

हरिजनसेवक, ४–१२–'३७

३

दो संस्कृतियां *

जो विचार मैं पेश कर रहा हूं, अुन्हें आप मेरे ही विचार मानें। यह न मान लें कि ये विचार तालीमी संघ या गांधीजीका मत भी अुपस्थित करते ही हैं।

जो शिक्षा-पद्धति हमारे देशमें प्रचलित है, अुस पर अनेक प्रकारके आक्षेप किये जाते हैं। ये आक्षेप आजसे नहीं, परन्तु वर्षोंसे होते रहे हैं। तो भी वह पद्धति अभी तक कायम है। और समझने लायक बात तो यह है कि आक्षेप करनेवाले हम लोगोंमें से अधिकतर अुस पद्धतिका संचालन करनेवालोंमें से ही पैदा हुअे हैं तथा आक्षेप करने पर भी अुसी पद्धतिको चलाते रहते हैं। अिसलिअे हमें विचार करना चाहिये कि हम अिस शिक्षा पर आक्षेप क्यों करते हैं और अिसके बावजूद अुसीको क्यों चला रहे हैं।

हम अिस शिक्षा पर आक्षेप करते हैं, अिसका अर्थ यह है कि अिसके द्वारा हमारी आवश्यकतायें अथवा हमारी आकांक्षायें अथवा दोनों अच्छी तरह पूरी नहीं होतीं। हम अिसी शिक्षाको कायम रखते हैं, अिसका अर्थ यह होता है कि कुछ भी कहें तो भी अिसके द्वारा हमारी कुछ आवश्यकतायें अथवा आकांक्षायें अथवा दोनों पूरी होती हैं। अिन दोनों बातोंका हमें ध्यान रखना चाहिये और अुनका रहस्य समझना चाहिये।

तो हमें अितना याद रखना चाहिये कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति भी अेक विशेष प्रकारकी संस्कृतिकी प्रतिनिधि है। वह सर्वथा विदेशी है,

---

* वर्धामें हिन्दुस्तानी तालीमी संघके तत्त्वावधानमें दिया गया अेक भाषण।

यह कहना ठीक नहीं। मेरे मतानुसार जिस प्रकारकी शिक्षा-प्रणाली प्राचीन काशी (अथवा आजकी भी सनातनी काशी) और मुस्लिम कालमें हमारे देशमें प्रचलित थी, अुससे आजकी शिक्षाका प्रकार भिन्न नहीं है। यह सही है कि अिन तीनों युगोंमें अलग अलग भाषाओंको प्रतिष्ठा मिली है। अेक कालमें संस्कृत भाषाकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक थी; बादमें फारसीकी, फिर हिन्दुस्तानीकी और फिर अंग्रेजी भाषाकी —अिस प्रकार अेकके पश्चात् दूसरीकी प्रतिष्ठा बढ़ी। परंतु अुनके द्वारा जिस संस्कृतिको पोषण मिला, वह तो अेक ही रही है। वह संस्कृति अुनकी है, जिन्हें हम भद्र लोग अथवा सफेदपोश लोग मानते हैं। मेरा तो यह खयाल है कि कम-से-कम पिछले अेक हजार वर्षोंमें राज्यकी तरफसे बालकों और बड़ोंको शिक्षा और संस्कार देनेका जो काम हुआ है, वह केवल सफेदपोश लोगोंमें ही हुआ है।

आर्य — भद्र — सम्मानित जातियां हमारे देशमें आरंभसे ही रही हैं। वे अंग्रेजोंकी पैदा की हुअी नहीं हैं। संभव है कि अंग्रेजोंने अुनका क्षेत्र कुछ बढ़ा दिया हो, परंतु अंग्रेजोंने अुन्हें पैदा नहीं किया।

भद्र संस्कृतिका लक्षण मनुष्यकी तर्क और कल्पना-शक्तिका विकास है। संस्कारिताके क्षेत्रमें शास्त्री, पंडित, अुलेमा, कवि, ललित कलाकार (जैसे चित्रकार, गायक अित्यादि) लोग अुसके प्रतिनिधि हैं। दुनियादारीके क्षेत्रमें अुसके प्रतिनिधि वकील, वैद्य, डॉक्टर, हकीम, अध्यापक, अुस्ताद और मुंशी हैं। अंग्रेजी शिक्षा-पद्धतिका संस्कृतिके विकासकी ओर दुर्लक्ष नहीं था; हां, अुस पद्धतिने अुसे अपने विचारोंका वेश जरूर पहना दिया है। परंतु यह तो अिस्लामने भी किया था। दुनियादारीके क्षेत्रमें अंग्रेजोंने अैसे भी कुछ भद्र धंधे निर्माण कर दिये हैं, जिनमें बुद्धि और परिश्रम दोनोंकी आवश्यकता पड़ती है। अिनमें बुद्धि और परिश्रम दोनोंके कामोंको अलग करके अुनके बौद्धिक विभागोंके भद्र धंधे बना दिये गये हैं। अुदाहरणार्थ, अिंजीनियरी, खेती वगैरा। अंग्रेजोंने अपनी सूक्ष्म शासनीय नियम-पालनकी आदतोंके जरिये अिन दुनियवी धंधोंका अधिक विकास भी किया है।

अंग्रेजी शिक्षाके विरुद्ध आक्षेप करनेके बावजूद हमारा भद्र वर्ग अुसे छोड़ नहीं सकता, जिसके कारण अूपर बताये गये हैं।

भद्र संस्कृति मनुष्योंकी समानताके सिद्धान्त पर खड़ी नहीं हुअी है। तात्त्विक दृष्टिसे वह केवल मनुष्योंकी नहीं परंतु भूतमात्रकी समानता बतायेगी, परंतु दुनियादारीके कामोंमें वह केवल अितना ही नहीं कहती कि मनुष्य मनुष्यके बीच भेद होते हैं, परंतु यह भी कहती है कि ये भेद रहने ही चाहिये। अिसलिअे वह समाज-व्यवस्थाके लिअे हिंसा — पशुबल — को अपरिहार्य मानती है और कहती है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपनी-अपनी मर्यादामें रखनेके लिअे समाजके राजदण्डको सदा घूमते रहना चाहिये।

यह कहा जा सकता है कि व्यवहारमें भद्र संस्कृति अुतने ही मानव-विभागको मनुष्य-जातिमें गिनती है, जिसे वह भद्र जीवनमें निभाये रखना योग्य और संभव मानती हो। बाकीके लोग संस्कृतिके क्षेत्रसे बाहर और अिसलिअे अुसकी सभ्यताकी व्याख्याके भी बाहर हैं। वे शूद्र, दास, गुलाम, गिरमिटिया अथवा और कुछ भी हो सकते हैं, परंतु अुसके समाजके नहीं हो सकते और समाजके सारे अधिकार या सुविधायें भोगनेके पात्र नहीं हो सकते।

भद्र संस्कृतिसे अूंचे दर्जेकी अेक और संस्कृति भी प्राचीन कालसे जगतमें चली आअी है। अुसे मैं संत अथवा औलिया संस्कृति कहूंगा। कभी कभी अिसे पूर्वकी संस्कृति और भद्र संस्कृतिको पश्चिमकी संस्कृति कहा जाता है। परंतु मुझे यह परिभाषा अुचित नहीं जान पड़ती। फिर यह भी नहीं है कि भद्र संस्कृति आसुरी है और भद्र संस्कृतिसे बाहर रहनेवाले लोग दैवी संस्कृतिके ही हैं। दोनों संस्कृतियां दुनियाभरमें प्रचलित हैं और जैसे भद्र संस्कृतिमें कुछ दैवी अंश भी हैं, वैसे ही अुसके बाहर रहनेवाले लोगोंमें आसुरी भाव भी हैं। फिर भी सारी दुनियाके देशोंमें औलियों और संतोंकी भी अेक परंपरा सदासे चली आअी है। अिन संतोंका काम जितना और लोगोंमें हुआ है अुतना भद्र लोगोंमें नहीं हुआ। वे या तो भद्रेतरोंमें पैदा हुअे हैं अथवा भद्र वर्गमें जन्म लेने पर भी अुन्होंने भद्रेतरोंके साथ तादात्म्य साध लिया है। प्रायः भद्र लोगोंने अुनका विरोध किया है और अुन्हें कष्ट भी दिये हैं। परंतु अंतमें, कम-से-कम, जबानसे

अुन्हें स्वीकार किया है और अुनकी स्थूल वन्दना की है। गांधीजी अुसी परंपराके अेक पुरुष हैं।

भारतकी हो या बाहरकी, संत सभ्यताके तीन सिद्धान्त हैं : मानव-मात्रकी समानता, अहिंसा और परिश्रम। भद्र लोग मानते हैं कि सभ्यताके विकासके लिअे फुरसतका होना बहुत आवश्यक है। संतोंका यह मत नहीं है। अुनका कहना यह नहीं है कि फुरसत अथवा आराम बिलकुल नहीं चाहिये। परंतु अुनका मत यह है कि संस्कृतिके विकासके लिअे परिश्रम अनिवार्य है और फुरसतमें कुछ न कुछ खराबीका डर भी है।

अिसका कारण समझना कठिन नहीं। यह सही है कि मनुष्य केवल अन्न पर नहीं जीता, परंतु साथ साथ यह भी मानना पड़ेगा कि मनुष्य अन्नके विषयमें बेपरवाह भी नहीं रह सकता। अुसे अन्न पैदा करना ही पड़ता है, फिर भले वह केवल मनुष्यके ही बलसे करे अथवा मनुष्य-बलके साथ पशुबल अथवा यंत्रबलका भी अुपयोग करे। साथ ही यह भी है कि दूसरे बलोंकी मदद ली जाय, तो भी मनुष्य-बलको बिलकुल अनावश्यक नहीं बनाया जा सकता और मनुष्योंके बहुत बड़े भागको तो अन्न पैदा करनेके लिअे अपना ही बल काममें लेना अनिवार्य होता है। अब हमारा राज्यतंत्र पूंजीवादी सिद्धान्तों पर बना हुआ हो या साम्यवादके सिद्धान्तों पर, जब तक मनुष्योंमें यह संस्कार बढ़ाया जाता है कि परिश्रम अेक महान कष्ट है, अुसकी अनिवार्यता मानव-जातिके लिअे अेक घोर शाप है, तब तक अेक ओर तो मनुष्यसे परिश्रम करानेके लिअे कानून-कायदे — अर्थात् जबरदस्ती — अनिवार्य हो जायंगे और दूसरी ओर मनुष्य हमेशा अुनसे बचनेका प्रयत्न करता रहेगा। जब साम्यवादकी यह आदर्श स्थिति आ जाय कि केवल दो ही घंटे काम करनेकी जरूरत रहे, तब भी जब तक परिश्रमको आफत समझनेकी हमारी मनोवृत्ति बनी रहेगी तब तक अुतना काम भी टालनेका मनुष्य प्रयत्न करता रहेगा। दूसरे शब्दोंमें कहें तो तब तक अुस संस्कृतिको कायम रखनेके लिअे हिंसाका आश्रय लेना ही पड़ेगा।

मतलब यह है कि परिश्रम — यंत्रवत् अथवा [illegible] दोनों — और अहिंसा सगे भाअी-बहन हैं। परिश्रमके प्रति अरुचि पैदा करने

तो साथ साथ अनमानता और अुसे टिकाये रखनेवाली हिंसाकी मनोवृत्ति बढ़ाये बिना काम नहीं चलेगा। बेशक, मनुष्यको आरामकी आवश्यकता रहती है। परंतु आरामका स्थान अुसके जीवनमें वैसा ही होना चाहिये जैसा हृदयकी क्रियामें होता है। हृदय हर बार जब फूलता और संकुचित होता है, तब अुसके बीचमें अुसे कुछ देर आराम लेना पड़ता है। परंतु विचार कीजिये कि कोअी हृदय अपने आरामके क्षणोंका ही आदर करे, फूलने और संकुचित होनेकी कियाका तिरस्कार करने लग जाय, तो अुसके मालिककी क्या दशा होगी? अिसी प्रकार जो समाज आरामको जीवनका ध्येय बना ले और परिश्रमकी तरफ अरुचिकी दृष्टिसे देखे, अुसे तो अन्तमें मरना ही होगा।

'वर्धा-पद्धति' केवल पढ़ानेका अेक नया ढंग ही नहीं, परंतु जीवनकी नअी रचना और नया तत्त्वज्ञान है। यह तत्त्वज्ञान स्वीकार हो तो अुसके अनुसार समाजकी रचना करनेका बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये। अिस तत्त्वज्ञान पर निर्मित शालाअें भद्र शालाओंसे भिन्न प्रकारकी हों, यह अनिवार्य है। मैं कह चुका हूं कि भद्र जीवनमें हिंसाका स्वीकार किया गया है, अर्थात् युद्धको भी वह जीवनकी अेक आवश्यकता मानता है। अिसलिअे बचपनसे ही वह बालकमें युद्धके लिअे आदर पैदा करता है। वह युद्धके और रणवीरोंके यशोगान करता है और अन्य देशोंमें तो मनुष्यको मारनेकी शिक्षा सबको अनिवार्य रूपमें प्राप्त करनी पड़ती है। हमारी दंतकथाअें और अैतिहासिक कथाअें अधिकतर मनुष्यके हाथों हुअी मनुष्यों अथवा पशुओंकी हत्याओंका वृत्तांत ही होती हैं। धार्मिक कथाअें भी अिससे मुक्त नहीं होतीं। और रूपकात्मक कथाअें भी लड़ाअी और मारकाटकी मनोवृत्तिका आश्रय लेती हैं।

अिस प्रकार, हमें अेक बात यह भी ध्यानमें रखनी पड़ेगी और अपने साहित्यमें से अत्यंत सावधानीपूर्वक अैसी कथाअें निकाल देनी पड़ेंगी, भले वे कितनी ही धार्मिक और आकर्षक क्यों न हों। और बाल-मानसके बारेमें हमने जो पूर्वग्रह बना लिये हैं वे भी छोड़ देने होंगे। जैसे, यह मान्यता है कि अमुक आयुका बालक अमुक युगके मनुष्यका प्रतिनिधि है, अिसलिअे अुसे अुस दशाकी पोषक कहानियां कहनी ही चाहिये।

सच पूछा जाय तो मनुष्य भले और बुरे भाव तथा सच्चे या झूठे तर्कको प्रगट करनेके तरीकोंमें हजारों कदम आगे बढ़ा होगा, फिर भी हजारों वर्षोंमें अुन भावों और तर्कोंके प्रकार या मात्रामें शायद ही कोअी फर्क पड़ा है। यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्योंके हृदय और बुद्धिका आगे विकास हुआ है।

अिसका अेक कारण कदाचित् यह हो कि मनुष्यने प्राचीन कालसे आज तक हिंसाकी कलाका विकास करनेके लिअे बुद्धिपूर्वक अत्यंत परिश्रम किया है। परंतु अहिंसाकी कलाका विकास करनेके लिअे शायद ही कोअी परिश्रम अुठाया है। बेशक, प्रत्यक्ष जीवनमें तो अहिंसाका अुपयोग वह अुत्से ही करता रहा है। परंतु यह अुपयोग अुसने वैसे ही किया है, जैसे कोअी अपढ़ मजदूर 'लीवर' या 'गुरुत्वाकर्षण' के बलोंका सहज अुपयोग करता है; वह अुसका गणित अथवा वैज्ञानिक स्पष्टीकरण नहीं जानता। जब विज्ञान-शोधकोंने अिसके गणित और स्पष्टीकरण समझ लिये, तब अुन्होंने अिसके अुपयोगकी सैकड़ों नअी तरकीबें निकालीं। अेक जमाना अैसा था जब वैज्ञानिक मलिन विद्याके अुपासक माने जाते थे। परंतु अिन शोधोंने विज्ञान-संबंधी हमारी वृत्ति ही बदल डाली है।

अिसी तरह जब अहिंसा-शक्तिका बुद्धि और मानसशास्त्रके साथ संशोधन होगा और तदनुसार मानव-जातिके पालन-पोषणकी पद्धतियां ढूंढ़ी जायंगी, तब कदाचित् हमें यह भी अनुभव होगा कि बाल-मानस जैसा हम मानते हैं अुससे भिन्न प्रकारका हो सकता है।

हरिजनबन्धु, २४, ३१-७-'३८

४

गांधीजीके शिक्षा-संबंधी विचार*

मुझसे आपके सामने गांधीजीके कुछ महत्त्वके विचार प्रगट करनेको कहा गया है। यह काम कठिन तो है, फिर भी अपनी मर्यादाअें ध्यानमें रखकर मैंने अिसे स्वीकार कर लिया है। पहली बात तो यह है कि मैं गांधीजीके जो विचार प्रगट करूंगा अुनकी जिम्मेदारी मेरी है, गांधीजीकी नहीं। और अुनके विचारोंको मैं अपनी समझके अनुसार आपके सम्मुख रखूंगा। मेरी अिस समझमें अुनकी दृष्टिसे भूल भी हो तो ये विचार अुनके नहीं, परंतु मेरे मान लिये जायं। दूसरी बात यह है कि अुनके सब विचारोंका विवेचन करना कठिन है। केवल शिक्षा-संबंधी कुछ विचार मैं यहां पेश करूंगा।

गांधीजीने अनेक बार कहा है कि अुनका कोअी नया तत्त्वज्ञान नहीं है। अुन्होंने जो नअी चीज बताअी है वह है दुनियादारीमें पैदा होनेवाली कठिनाअियां और झगड़े मिटानेमें मूल सिद्धान्तोंका अुपयोग करनेका व्यावहारिक मार्ग। अुनकी मंशा भिन्न-भिन्न महान सनातन धर्मोका वैयक्तिक नहीं, परंतु सामाजिक जीवनमें सामूहिक रूपमें अुपयोग करनेकी है। तत्त्वज्ञान तो वह है जो प्रत्येक धर्मके महात्माओंने बताया है और जिसके तीन मुख्य अंगोंका पिछली बार मैंने विवेचन किया था। वे अंग हैं अहिंसा, समानता और परिश्रम। जिन्हें अुस तत्त्वज्ञानमें श्रद्धा नहीं होगी, अुनकी गांधीजीके अन्य विचारों पर भी श्रद्धा नहीं बैठेगी। अिसलिअे अिन तीनोंकी जड़में रहे सिद्धान्तोंका विचार करना चाहिये।

कुछ लोग पूछते हैं कि समानता और परिश्रम तो ठीक हैं, परंतु अहिंसा किसलिअे? हिंसा भी क्यों नहीं? अिसका अुत्तर गांधीजीके पास अितना ही है: अीश्वर पर विश्वास होनेके कारण। हालमें ही (१८-६-'३८के)

* वर्धामें हिन्दुस्तानी तालीमी संघके तत्त्वावधानमें दिया हुआ दूसरा भाषण।

'हरिजन' में गांधीजीने अिस विषयके लेख लिखे हैं। अुनमें वे बताते हैं:

"शान्ति-सेनाके सदस्यका — वह स्त्री हो या पुरुष — अहिंसामें अटल विश्वास होना चाहिये। और यह तभी हो सकता है जब अीश्वरमें अुसका सच्चा विश्वास हो। अहिंसाको माननेवाला मनुष्य अीश्वरकी कृपा और शान्तिके बिना कुछ नहीं कर सकता।"

परन्तु प्रश्नकर्ताओंको अितनेसे सन्तोष नहीं होता। वे कहते हैं कि अीश्वरका अस्तित्व आज शंकास्पद है। बड़े बड़े मनुष्योंकी बुद्धिने यह सिद्ध कर दिया है कि अीश्वर नहीं है, अिसलिअे अुसके साथ यह भी सिद्ध हो जायगा कि अहिंसा भी नहीं है।

यहां फिरसे भद्र संस्कृति और संत संस्कृतिके बीचका अन्तर समझनेकी जरूरत है। पिछली बार मैंने कहा था कि भद्र संस्कृतिमें तर्क और कल्पना-शक्तिका (जिसे हम बुद्धि कहते हैं) बहुत विकास हुआ है। परन्तु अीश्वरको खोजनेमें अथवा यह निश्चित करनेमें कि अुसका अस्तित्व है या नहीं, बुद्धि काम नहीं आती। हमारी पद्धति ही गलत है। जैसे कानोंसे देख नहीं सकते और आंखोंसे सुन नहीं सकते, वैसे ही अीश्वर-संबंधी ज्ञान हम केवल बुद्धिसे प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि यदि अुसे विषय मान लिया जाय तो भी वह हृदयका विषय है। हृदयकी शिक्षा पर आजकल अितना कम ध्यान दिया जाता है कि अधिकांश बुद्धिमान लोग अुसे समझ भी नहीं सकते। जैसे कान और आंख सुनने और देखनेकी आवश्यक और प्रत्यक्ष अिन्द्रियां हैं, वैसे मन भी हमारी प्रत्यक्ष अिन्द्रिय है। हम अपनी भूख-प्यास अपने-आप अनुभव कर सकते हैं। हममें अुत्पन्न होनेवाले दया, क्रोध, प्रेम आदि भाव हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं। अिसमें आंख, कान आदि पंचेन्द्रियोंकी जरूरत नहीं पड़ती। तर्क और कल्पनासे वे समझे नहीं जा सकते और यदि किसीको अुनका अनुभव कभी हुआ ही न हो, तो वर्णन द्वारा अुसे मनकी कल्पना नहीं कराओ जा सकती। अिसी प्रकार अीश्वर भी अिस सीधे ज्ञानसे समझनेका विषय है। 'सा' और 'रे' अथवा लाल और पीलेका अिन्द्रियोंको अनुभव हो जानेके बाद अुस पर कुछ तर्क अथवा वाणीका प्रयोग हो सकता है और अिसे

अिस भेदका पता न हो अुसे यह भेद समझानेका तरीका ढूंढ़ा जा सकता है। अितनी शर्त जरूर है कि सुननेवालेके आंख-कान पूर्ण स्वस्थ होने चाहिये।

अिस प्रकार पहले हृदय यदि तैयार हो तो तर्कयुक्त वाणी द्वारा अुसे थोड़ा-बहुत समझाया जा सकता है। अिसलिअे संत संस्कृतिमें बुद्धि और ज्ञानकी अपेक्षा हृदयकी शिक्षा पर अधिक भार दिया जाता है। हमारे बालकोंमें प्रेम, आदर, दया, करुणा आदि भाव अुत्पन्न होनेकी और अुन्हें विवेकसे काबूमें रखनेकी शक्ति आनी चाहिये। यह हृदयकी शिक्षा है। जब वह हृदयके अिस साधनको पहचानने लगेगा और अुसका विकास करेगा, तब वह अीश्वरके अस्तित्व अथवा नास्तित्व संबंधी विचार सुनने या करनेके योग्य बन सकेगा। अनुभवी मनुष्योंका कहना है कि अीश्वरकी खोज करनेका स्थान बुद्धि नहीं परन्तु हृदय है। फिर भी हम तर्क और कल्पनासे अुसे खोजनेका प्रयत्न करते हैं और न मिलने पर निराश होते हैं।

प्राचीन संतोंने अीश्वरके बारेमें जो शब्द काममें लिया है, वही गांधीजी लेते हैं और वह है 'सत्' या 'हक'। अिसका अर्थ यह है कि सारे जगतके मूलमें अेक महान सत्य — हकताला — निहित है; और जहांसे हमारी अहंवृत्ति — खुदनुमाअी — और तरह तरहके अनुभव अुत्पन्न होते हैं, वह हमारा हृदय ही अुसे ढूंढ़नेका स्थान है। अिस हकका सबसे बड़ा प्रमाण संसारमें चल रहा नियमपालन — हुक्म — का राज्य है। संसारमें दिखाअी देनेवाली सारी भलाअी-बुराअी नियम — हुक्म — से होती है। भलाअी भलाअीके नियमसे और बुराअी बुराअीके नियमसे। भलाअीके लिअे भलाअीके नियम ढूंढ़ने चाहिये और यही अीश्वरको जानने का रास्ता है। अुसमें से अहिंसा, अपरिग्रह, अस्पृश्यता-निवारण, सेवा आदिसे संबंध रखनेवाले गांधीजीके सारे व्रत-विचार मिल जाते हैं।

अिनमें वर्धा-योजनाकी दृष्टिसे अेक महत्त्वका सिद्धान्त है और वह है 'सर्वधर्म-समभाव' का। अुस योजनामें धार्मिक शिक्षाकी क्या प्रणाली होनी चाहिये? मुझे भय है कि अिस मामलेमें हमारे विचार पूरी तरह स्पष्ट नहीं हैं।

अिसमें यह कहा जाता है कि सब धर्म समान हैं, सब सत्यकी ओर ले जानेवाले हैं और अिसलिअे सबके प्रति समान आदर रखो। अिस बातको बुद्धि और हृदयसे समझनेमें बड़ा अन्तर है। दो भाअियोंमें झगड़ा हो और यदि अुसके निपटारेके लिअे वे कचहरीमें जायं, तो न्यायाधीश अपनी न्यायबुद्धिसे जो निर्णय देता है वह अेकपक्षी होता है। परन्तु यदि वही झगड़ा वे अपनी मांके पास ले जायं, तो वह हृदयसे जो न्याय प्रदान करेगी वह दूसरी तरहका होगा। अिसी तरह यदि हम बुद्धिसे सब धर्मोंकी समानताका सिद्धान्त समझने जायं, तो अेक ओर वेद या गीता, दूसरी ओर बाअिबल और तीसरी ओर कुरानको रखते हैं। और सब शास्त्रोंको समझने बैठ जाते हैं तथा प्रत्येकका पृथक्करण करने लग जाते हैं। अेक ओर हम कृष्ण, बुद्ध, अीसा, मुहम्मद आदिकी अेक-दूसरेके साथ तुलना करने लग जाते हैं और फिर आश्चर्य प्रगट करते हैं कि अिन सबको पूरी तरह कैसे समझा जा सकता है; अथवा कोअी बुद्धिशाली मनुष्य कहता है: हां, ठीक है, क्योंकि अिनमें से किसीमें भी सार नहीं है। अथवा समभाव साधनेवाला मनुष्य अेक दिन कृष्णका भजन, दूसरे दिन पैगम्बर मुहम्मदका और तीसरे दिन अीसाका गुणगान करेगा और अिस प्रकार प्रत्येकको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करेगा। अिससे भले ही सर्वधर्म-समानता सधती हो, परन्तु अैसा करनेसे भक्तिका फल नहीं मिलता। सर्वधर्म-समानताको समझनेका सच्चा मार्ग हृदयका है। प्रत्येक धर्ममें जो संत या औलिया हो गये हैं, अुनकी तरफ देखें तो अुनके जीवनकी बाहरी तफसीलोंको न देखते हुअे अुनके हृदयकी गहराअीको देखना चाहिये। अैसा करनेसे मालूम पड़ेगा कि अुन सबका 'हक' और हुक्म (सत्य और नियम) में समान विश्वास है। सभीके सद्गुणोंके विकासमें लगभग समानता है, मानो सब अेक ही मां-बापके बेटे हैं। अेकका जन्म हिन्दुस्तानमें हुआ हो, दूसरेका अरबस्तानमें और तीसरेका यूरोपमें तथा चौथेका चीनमें हुआ हो, तब भी सब अीश्वरका अेकसा अनुभव और वर्णन करते हैं और दुनियां सद्गुणों और भलाअीके बारेमें अेक ही प्रकारके नियम बनाते हैं।

मूर्ति, काबा, क्रॉस, स्तूप अथवा लिंगकी पूजा की जाय, अथवा अेक स्त्रीसे विवाह किया जाय या चारसे, ये बातें तो देशकाल—परिस्थिति

के भेद हैं। जो संत जिन लोगोंमें पैदा हुआ, वहां जिन साधनोंका अुसे पता था अुनका अुसने अीश्वर-प्राप्तिके लिअे अुपयोग किया। परन्तु ये तो मानवीय नियम हैं। अीश्वरीय नियम अिनसे अधिक गहरे हैं और अिनके विषयमें सब धर्म और सब औलियों और साधु-संतोंका अेक ही मत है। 'सर्वधर्म-समभाव' को समझनेकी यही कुंजी है। अिसलिअे बालकोंको सब धर्मोंके शास्त्र पढ़ानेकी अितनी जरूरत नहीं, जितनी सब देशोंके अीश्वरीय पुरुषोंके हृदयोंकी गहराअी प्रकट करनेवाले जीवन-चरित्र पढ़ानेकी है। और सब विद्यार्थी अेक दिन हिन्दू पद्धतिसे अुपासना करें, दूसरे दिन अिस्लामी पद्धतिसे और तीसरे दिन अीसाअी पद्धतिसे प्रार्थना करें, यह भी जरूरी नहीं है। जो विद्यार्थी जिस धर्ममें पला हो वह अुसी धर्मके ढंग पर प्रार्थना करे। सब धर्मोंके चिह्नोंका शालामें प्रदर्शन होना चाहिये, अिसे भी मैं आवश्यक नहीं मानता।

शिक्षासे सम्बन्ध रखनेवाला गांधीजीका अेक और विचार वर्ण-व्यवस्थाके बारेमें है। वर्ण-व्यवस्थाका जो अर्थ सनातनी हिन्दू मानते हैं, अुसमें और गांधीजीकी कल्पनामें भेद है। 'सनातनी वर्ण-व्यवस्था' शब्द जाति-व्यवस्था और अूंची-नीची श्रेणियोंका दूसरा नाम है। गांधीजी वर्ण-व्यवस्थाका जो अर्थ करते हैं, वह अलग-अलग धंधे करनेवाले लोगोंकी संगठित व्यवस्था है। परन्तु दोनों वर्ण-व्यवस्थाओंमें अेक अंश समान है। पुरानी वर्ण-व्यवस्थामें भी यह आवश्यक माना जाता था कि प्रत्येक मनुष्य अपने ही वर्णका धंधा करे। गांधीजी भी अिसीको ठीक मानते हैं कि जहां तक हो सके हरअेक बालक अपने माता-पिताका ही धंधा करे। अिससे बचपनसे ही धंधेके मामलेमें अेक निश्चित धारणा बन जाती है। हमारी आधुनिक शिक्षामें धंधेकी दृष्टिसे वर्ण-व्यवस्था टूट गअी है। अिससे मनुष्य बीस-पचीस वर्षका हो जाता है, तब भी यह निर्णय नहीं कर पाता कि वह किस धंधे द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करेगा। वह अेकके बाद अेक परीक्षा पास करता जाता है, परन्तु अुसे यह पता नहीं होता कि वह किसलिअे अिस प्रकारकी शिक्षा ले रहा है और अपनी परीक्षाअें पास करनेके बाद कौनसे धंधेसे अपना निर्वाह करेगा। अुद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी योजनामें

अेक विचार यह भी होना चाहिये कि जहां तक हो सके बालकको अपने जीवनके धंधेके बारेमें स्थिर बुद्धिवाला बनाया जाय।

अन्तमें, गांधीजीके शिक्षा-संबंधी कुछ मुख्य विचार संक्षेपमें कह दूं:

(१) शिक्षाका ध्येय 'सा विद्या या विमुक्तये' है। अर्थात् विद्या द्वारा बालकको अपनी मुक्ति प्राप्त करनी चाहिये। मुक्ति शब्दके आध्यात्मिक और भौतिक दोनों अर्थ किये जा सकते हैं।

(२) जब तक अुसकी आजीविकाका प्रश्न हल न हो, तब तक यह ध्येय सिद्ध नहीं हो सकता। अर्थात् जिस हेतुसे भी बालककी शिक्षा अक्षर-ज्ञान द्वारा नहीं परन्तु अुद्योग द्वारा होनी चाहिये।

(३) अुद्योग और शिक्षा-पद्धतिका निश्चय करनेमें हम दस प्रतिशत लोगोंको भी नव्वे प्रतिशत लोगोंका खयाल रखना चाहिये।

(४) बहुत छोटे बालकोंकी शिक्षाका आरंभ स्वच्छताकी शिक्षासे होना चाहिये। और अक्षर लिखानेसे पहले अुन्हें चित्रकला (ड्रॉअिंग) सिखाना चाहिये। बालकके हाथमें कलम या पेन्सिल रखनेमें देर लगे तो अुसमें बुराअी नहीं है। परन्तु तब तक अुसका अज्ञान रहना जरूरी नहीं है। अनेक प्रश्नोंका ज्ञान अुसे जबानी देना चाहिये।

(५) शिक्षाका माध्यम स्वभाषा ही होनी चाहिये।

(६) अितिहासमें हमें अधिकतर राजवंशोंकी अुथल-पुथल, लड़ाअियां वगैरा ही पढ़ाअी जाती हैं। मानव-जीवनमें ये चीजें प्लेग या हैजेकी तरह कभी कभी फूट निकलनेवाली बीमारियां हैं। ये कोअी मनुष्योंका नित्य जीवन नहीं हैं। अुनका नित्य जीवन तो अहिंसात्मक समाज-संगठन द्वारा चलता है और अुसीके द्वारा मनुष्य-जातिने अपना अब तकका विकास किया है। अितिहास द्वारा जिस विकास-क्रमका ज्ञान होना चाहिये।

(७) जिसके सिवा संगीत और कवायद पर गांधीजी बहुत जोर देते हैं।

हरिजनबन्धु, ३०-१०-'३८

५

‘द्वारा’, ‘और’, ‘की’?

‘अुद्योग और शिक्षा’ तथा ‘अुद्योगकी शिक्षा’ यह भाषा और अिसका अर्थ हम जानते हैं। परन्तु अब ‘अुद्योग द्वारा शिक्षा’ यह नअी भाषा निकाली गअी है।

अिस लेखमें मैं अिन तीनोंके बीचका भेद बतानेका प्रयत्न करूंगा।

जहां साधारण लिखने-पढ़नेके साथ दो तीन भाषाअें, अितिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान आदि पढ़ाया जाता है और अिसके सिवा कारीगरोंके धंधोंकी भी कुछ न कुछ शिक्षा दी जाती है, अुसे ‘अुद्योग और शिक्षा’ कहते हैं। यह चीज सबको परिचित होनेसे अिसका विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं।

जहां भाषाअें, अितिहास, भूगोल आदि कुछ नहीं पढ़ाया जाता, केवल कारीगरोंके या किसी और अेकाध धंधेकी शिक्षा दी जाती है और अुस धंधेके लिअे गणित, विज्ञान आदिका जितनी आवश्यकता हो अुतना ही ज्ञान दिया जाता है, वह ‘अुद्योगकी शिक्षा’ है। अिसमें भाषा, अितिहास, भूगोल आदि विषयोंकी शिक्षाकी या तो आवश्यकता ही नहीं मानी जाती; अथवा अैसा नियम होता है कि ये सब जो पढ़ चुके हों वे ही अिन अुद्योगोंकी शिक्षा लें। डॉक्टरी, वकालत, अिजीनियरी, हिसाब-किताब, शॉर्टहैण्ड, टाअिप-राअिटिंग आदि सब मुंशीगिरीके धंधोंकी शिक्षा अधिकतर अिसी ढंगसे होती है। अिसमें जिस अुद्योगके साथ जितने विषयोंका संबंध हो अुतनोंकी ही शिक्षा दी जाती है। यह ‘अुद्योगकी शिक्षा’ है। परन्तु वह अिस धंधे द्वारा ही नहीं दी जाती। फिर भी जीवन-निर्वाहकी दृष्टिसे अुद्योग और धंधेके बीच कुछ समानता होनेसे ‘अुद्योग द्वारा शिक्षा’ का अिसमें कुछ अंश होता है।

अब अेक और अुदाहरण लें।

सॉलीसिटरका पेशा लीजिये। सॉलीसिटर बननेके लिअे अुम्मीदवारको किसी अन्य सॉलीसिटरके मातहत कुछ वर्ष तक काम करना पड़ता

है। अुसमें सॉलीसिटर अुस तरुणको अपने पास बिठाकर शिक्षककी भांति पाठ नहीं पढ़ाता, और न अिस पेशेकी शिक्षा देनेवाली कोअी शाला ही होती है। वह तो केवल अुम्मीदवारको दूसरे कारकुनोंके साथ अपने दफ्तरके काममें लगा देता है। धीरे धीरे अुम्मीदवार अुस कामको समझने लगता है। जो कानून अुसे सीखना है, वह अुसे स्वयं ही पढ़ लेना होता है। अिस प्रकार काम करते-करते वह दो तीन वर्षमें सॉलीसिटरके धंधेके सब रंगढंग जान लेता है। अिस धंधेके लिअे लगभग बी० अे० के बराबर साधारण शिक्षा आवश्यक मानी जाती है। अिसलिअे सॉलीसिटर अैसोंको ही अुम्मीदवारके रूपमें ले सकता है।

पहले ही दिनसे अुम्मीदवारसे जो काम कराये जाते हैं, अुनमें शायद ही कोअी अैसा काम होता है, जो केवल अुसे सिखानेके लिअे शुरू किया गया हो। दफ्तरके किसी आवश्यक काममें ही अुसे लगाया जाता है। वह भूल करे तो भले ही अुसका काम रद्द कर दिया जाय, परन्तु अुसके लिअे अैसा काम नहीं ढूंढ़ा जाता जो दफ्तरके लिअे आवश्यक न हो, और केवल अुसे सिखानेके लिअे किया जाय। वह फुरसतके समय पुरानी फाअिलें ढूंढ़-ढूंढ़ कर देखता अवश्य है; परन्तु यह तो अुसकी सीखनेकी तीव्र अिच्छाकी ही निशानी है।

अिसमें (मोटे अर्थमें) अुद्योगकी शिक्षा है। और वह अुद्योग द्वारा शिक्षा भी है। परन्तु अुसमें साधारण शिक्षा नहीं है। अिसी तरह यह शिक्षाकी आधारस्वरूप भी नहीं है। जिसकी साधारण शिक्षा हो चुकी हो, वही अिसका विद्यार्थी हो सकता है।

अिस प्रकारकी अुद्योग द्वारा शिक्षा बहुत पुराने समयसे तरह तरहके धंधोंमें दी जाती रही है। जब आजकी तरह सार्वजनिक शालायें नहीं थीं, तब बनियोंके लड़के हिसाब और बहीखाता किस तरह सीखते थे? कायस्थोंके लड़के चिट्ठीपत्री और दस्तावेज लिखनेका ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करते थे? गांवके पंडितजीके पास आठ या नौ वर्षकी अुम्र तक कुछ न कुछ लिखना-पढ़ना और गणित सीख लेनेके बाद किसी सराफकी दुकान पर या बड़े कायस्थके पास बैठकर अुसके सामने सहायता करते-करते वे यह ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। मुझे स्वयं बहीखातेकी शिक्षा [illegible]

वहुत कम मिली है। व्यापारी जिस चतुर्थांश या पाओी पद्धतिसे (जैसे ५०॥=॥ रु०) हिसाव करते हैं, वह वम्बअीकी जिस शालामें मैं पढ़ता था अुसमें नहीं सिखाअी जाती थी। वहीखाता भी नहीं सिखाया जाता था। ये चीजें मैंने वचपनसे अपने पिता और भाअियोंकी दुकान पर फुरसतके समय अुनके काममें मदद करते-करते सीखी थीं। अिसके लिअे मुझे कोअी खास हिसाव नहीं लिखवाये जाते थे; पैसेके लेनदेनमें तथा वहीखाता देखते और लिखते-लिखते अुसके नियम समझमें आ गये थे। जहां नहीं समझमें आता या भूल हो जाती वहां पिताजी वता देते थे। अिसकी पाठ्यपुस्तकें तो जव ये विषय सिखानेका भार मुझ पर राष्ट्रीय पाठशालामें आया तव मैंने देखीं।

आज भी खेतीका जो ज्ञान परंपरासे हमारे लोगोंमें है, अुसे करोड़ों किसान वालक किस तरह सीखते हैं? गांवका जुलाहा, वढ़अी, लुहार, कुम्हार, मोची, तेली आदि अपने-अपने धंधेका ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करते हैं? यह सच है कि हमारी जनता वहुत अज्ञान है और पीछे रह गअी है। फिर भी यह तो हरगिज नहीं कहा जायगा कि वह विलकुल मूर्ख है अथवा निरी जंगली दशामें है; न अुसमें खेतीका ज्ञान है, न किसी कलाका। अुलटे अितिहाससे तो यह मालूम होता है कि सार्वजनिक पाठशालाओं द्वारा देशके अिन सव अुद्योगोंको सिखानेकी संगठित व्यवस्था न होने पर भी अिन कलाओंमें लोग आजकी अपेक्षा वहुत आगे वढ़े हुअे थे। अव तो वे अपनी कलाअें अुलटे भूलने लगे हैं।

'वात यह है कि शालाअें न होने पर भी जीवनरूपी पाठशाला तो हमारे देशमें सदा वनी ही रही है और वह शाला असंगठित रूपमें प्रत्येक धन्धेदारके घरमें ही चलती है। छोटे वच्चे वड़ोंकी सहायता करते हैं और सहायता करते-करते धंधा सीख लेते हैं। कभी-कभी वे अुम्मीदवार भी रखते हैं। कभी अुन धंधेवालोंकी पंचायतों या संघोंकी तरफसे भी अपने धंधेकी शिक्षा देनेका कुछ प्रवन्ध होता है।

ये सव अुद्योग द्वारा शिक्षाके दृष्टान्त हैं। अैसे और भी कअी दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। सामान्यतः शालामें न गअी हुअी लड़कियां जिस तरह खाना वनाना, शृंगार करना, सीना, लीपना वगैरा घरके काम सीखती हैं,

जिस प्रकार बालक स्वभाषा सीखते हैं, अथवा घरमें बोले जानेवाले नित्यपाठके स्तोत्र आदि सीखते हैं, वे शास्त्रीय पद्धतिसे विकसित न होने पर भी अुद्योग (अथवा काम) द्वारा शिक्षाके दृष्टान्त हैं। परन्तु अुन सबमें दोष यह है कि अुनमें केवल अुन-अुन अुद्योगोंकी ही शिक्षा मिलती है। बालकको सब तरहकी शिक्षा नहीं मिलती। जिसे हम विद्या-संस्कारकी शिक्षा कहते हैं, वह अुसमें नहीं मिलती।

मेरा आशय यह कहनेका नहीं कि विद्या-संस्कार या लिखने-पढ़नेकी शिक्षाके लिअे हमारे देशमें कोअी प्रबंध ही नहीं था। परन्तु अुसे देनेवाला अेक स्वतंत्र वर्ग था। वह पुराणिक, व्यास, कथाकार, अुपदेशक और साधु आदिका था।

कथाओं और अुपदेशों द्वारा साहित्य, अितिहास, भूगोल, विज्ञान, धर्म, नीति, सदाचार, तत्त्वज्ञान आदिका जो कुछ ज्ञान अुस ज़मानेके पंडितोंको प्राप्त था, अुसे वे लोगोंमें फैलाते थे। जिससे पढ़ाअी न होने पर भी लोगोंमें साधारण ज्ञानका प्रचार होता था। बेशक, अुन पंडितों, साधुओं, मुल्लाओं और फकीरोंका अपना ही ज्ञान प्राचीन ग्रंथोंमें मर्यादित था और वे स्वयं भी वर्तमान युगके ज्ञानसे अपरिचित थे। अिसलिअे प्राचीन साहित्य, धर्म, नीति, सदाचार, तत्त्वज्ञान आदि विषयोंमें अुनके ज्ञानका कुछ महत्त्व था; परन्तु अितिहास, भूगोल और विज्ञानकी विविध शाखाओंमें वह अधिकतर बेकार होने लगा था।

अिस प्रकार अुद्योगका और साधारण शिक्षाका, भले वह [illegible] ही हो, स्वतंत्र रूपमें प्रबंध था। अुद्योगकी शिक्षाके लिअे कम-से-कम पिछली पांच-सात शताब्दियोंमें तो शायद ही सार्वजनिक संस्थाअें रही होंगी। वह अुद्योगके ज़रिये ही दी जाती थी। साधारण शिक्षाके लिअे अुपरोक्त पंडित और पंडितोंकी शालाअें तथा कथा-कीर्तनकी संस्थाअें थीं। शालाओंमें केवल ब्राह्मण-बनिये आदि अूंची मानी जानेवाली जातियोंके लड़के ही पढ़ते थे। अुनमें से भी कुछ बिलकुल नहीं पढ़ते थे। परन्तु कथा-कीर्तनका लाभ सभी लोग अुठाते थे; अथवा अलग-अलग जातियोंमें अुनके अपने भक्त पैदा होते थे।

अब हम अिस योजना और वर्धा-योजनाके बीचका फर्क देखें।

अुद्योग द्वारा शिक्षाका पुराना ढंग व्यक्तिगत और खानगी पद्धतिका है। वह या तो पिता-पुत्र-पद्धति होती है अथवा अुम्मीदवार-पद्धति होती है। जहां अुम्मीदवार-पद्धति होती है, वहां कभी-कभी कानूनके बंधन भी होते हैं। अिस हद तक वह व्यवस्थित (organized) होती है। परन्तु बड़े पैमाने पर देशके सब बालकोंके लिअे सार्वजनिक शालाओंके रूपमें अैसी कोअी व्यवस्था नहीं है। वर्धा-योजनाका हेतु जीवनकी अिस स्वाभाविक पद्धतिको बड़े पैमाने पर, सार्वजनिक शालाओंके रूपमें, सभी बालकोंके लिअे लागू करना है।

अिसका अर्थ यह है कि जैसे किसान खेती, बढ़अी बढ़अीगिरी, लुहार लुहारी, बनिया दुकानदारी, गृहिणी घर-काम आदि धंधोंकी शिक्षा अपना धंधा करते-करते अपने बच्चोंको देते हैं, अुसी प्रकार परंतु शास्त्रीय पद्धतिसे हमारी सारी आवश्यक शिक्षा देशके समस्त बालकोंको सार्वजनिक शालाओं द्वारा देनेका प्रबंध सरकारी तंत्रके जरिये किया जाय। अिसका दूसरा अर्थ यह है कि सरकार दो-चार अैसे अुत्पादक धंधे शुरू करे (१) जो बड़े पैमाने पर सीधे सरकारकी तरफसे चलाये जा सकें, (२) जो बालकोंके लायक हों, (३) जिनमें अितनी सामग्री भरनेकी गुंजाअिश हो कि वे अुद्योग कराते-कराते अुनके द्वारा साहित्य, अितिहास, भूगोल, विज्ञान आदिकी पर्याप्त जानकारी बालकोंको दी जा सके, और (४) जो केवल बालकोंके मनोरंजन, खेलकूद या शिक्षाके लिअे ही नियोजित कृत्रिम अुद्योग न हों, परन्तु लाखों लोगोंके जीवन-निर्वाहके भी साधन माने जा सकनेवाले सच्चे अुद्योग हों। अिससे अुनमें राज्य-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, संपत्ति-व्यवस्था आदि सारी समाज-विद्याओंका भी व्यावहारिक ज्ञान देनेकी कुदरती सुविधा मिल जायगी।

अिनमें पहली दो शर्तें सबसे महत्त्वकी हैं। पहली यह कि सरकारकी सीधी देखरेखमें बड़े पैमाने पर चलाये जा सकनेवाले कुछ अुत्पादक धंधे ढूंढ़ लिये जायं। अर्थशास्त्रकी भाषामें कहें तो वे अिस देशके जीवन-अुद्योग (Key-industries) होने चाहिये। दूसरी शर्त यह है कि वे धंधे बालकोंके लायक होने चाहिये। कितने ही धंधे अैसे हैं जो देशके लिअे जीवन-रूप

हैं, परन्तु वालकोंके लायक नहीं हैं। दूसरी ओर, कुछ धंधे अैसे हैं जो वच्चोंके लायक तो हैं, परन्तु देशके जीवन-धंधे नहीं हैं।

अिन पिछले धंधोंकी अुद्योग द्वारा शिक्षाकी शालाअें हो सकती हैं; शर्त यह है कि अुन्हें खानगी संस्थाअें सरकारकी देखरेखमें चलायें। वेशक, अुनकी संख्या वहुत थोड़ी होगी। परन्तु अुद्योग द्वारा शिक्षाके सिद्धान्तकी दृष्टिसे अिनके लिअे गुंजाअिश है। सरकारकी दृष्टिसे प्रश्न यह है कि वालकोंके लायक राष्ट्रके जीवन-अुद्योग क्या हैं? स्पष्ट है कि अिनमें पहले नम्बर पर कताअी-वुनाअी ही आती है। संपत्ति-शास्त्रियोंके सभी सम्प्रदाय कपड़ेके धंधेको हमारे देशका जीवन-अुद्योग स्वीकार करते हैं, और अुसे सरकार-नियंत्रित (राष्ट्रीय – nationalized) वनानेमें भी विश्वास रखते हैं। बड़े और वालक, दोनोंके लिअे वह पूरा धंधा हो सकता है। हाथ-कताअी और हाथ-वुनाअीके रूपमें अिसमें वड़ों और वालकोंके वीच स्पर्धाका कोअी प्रश्न पैदा नहीं होता। साथ ही, कपास अेक अैसी चीज है, जिसने अितिहासमें पहले दर्जेका भाग लिया है। अुसके आसपास खेती, वढ़अीगिरी, लुहारी, रंगाअी, धुलाअी, छपाअी आदि स्वतंत्र धंधोंके अनेक भागोंकी योजना की जा सकती है।

अिस प्रकार, अुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ यह है कि सरकार देशके हितके कुछ धंधे अिस ढंगसे चलाये कि अुनसे देशके लिअे माल भी पैदा हो और वाल-शिक्षाकी व्यवस्था भी हो जाय।

वहुत वड़े पैमाने पर प्रवंध किया जा सके, अैसा दूसरा कोअी धंधा अभी तक ध्यानमें नहीं आता। खेती, गोपालन आदि देशके जीवन-अुद्योग तो हैं। परन्तु अुनमें वालकोंका अुपयोग करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। अुनमें वड़े-छोटोंकी वरावरी भी नहीं हो सकती। अिस-लिअे यद्यपि अैसी कुछ शालाअें सरकार चला तो सकती है, परंतु अुनकी संख्या थोड़ी ही रहेगी।

अुद्योग द्वारा शिक्षाके लिअे अलग अलग धंधोंकी खोजमें वहुतसे शिक्षाशास्त्री लगे हुअे हैं। यदि हम समझ लें कि वही धंधे शालाओंके लिअे अच्छा काम दे सकते हैं, जिन्हें सरकार-नियंत्रित वनाना संभव हो, तो खोज आसान होगी। जो अैसे नहीं वनाये जा सकते, अुनमें स्पर्धा कारण

वालकोंकी वेगार, महंगाअी और महंगाअीके कारण नुकसान वगैराकी कअी अुलझनें पैदा होंगी। जिन धंधोंको सरकारी वनाया जा सकता हो, अुनमें मालकी कीमत ठहराना सरकारके हाथमें रहेगा। जो धंधे सबके लिअे खुले हों, अुनमें न्याय और स्पर्धाके प्रश्नोंको हल करना कठिन है।

अुद्योग द्वारा शिक्षाकी पुरानी पद्धतिमें और अिस नअी योजनामें जो दूसरा भेद है, वह अुपरोक्त वातोंसे ध्यानमें आ सकता है। वह यह है कि हानिका धंधा न तो किया जा सकता है और न वालकोंसे कराया जा सकता है। यह तत्त्व दोनों पद्धतियोंमें समान है। परंतु पुरानी पद्धतिमें धंधेका अुद्देश्य लाभ अुठाने (profit-making) का होता है, जब कि वर्धा-योजनामें लाभ अुठानेका हेतु नहीं हो सकता। यह हेतु छोड़ कर धंधा करनेका अर्थ ही तो धंधेको सरकारी वनाना है।

दोनों पद्धतियोंमें अेक और भी भेद है। पुरानी पद्धतिमें गुरु और शिष्य दोनोंका यह अुद्देश्य होता है कि अुम्मीदवारको अिस ढंगसे तैयार किया जाय (वल्कि वह तैयार हो जाय) कि अुस धंधेसे वह अपनी जीविका चला सके। और केवल अितना ही अुसका अुद्देश्य होता है। नअी योजनामें अैसा अुद्देश्य और अितना ही अुद्देश्य नहीं होता कि विद्यार्थी अुसे सिखाये जानेवाले धंधेसे ही अपनी जीविका चलाये। अुसमें कातने-बुनने पर अिस हेतुसे जोर नहीं दिया जाता कि हिन्दुस्तानको कातने-वुननेवाले लोगोंका राष्ट्र वना दिया जाय। परन्तु अुसका अुद्देश्य यह है कि अुसके द्वारा वालकोंके शरीर, अिंद्रियों, मन और वुद्धिको पूरी तालीम मिले और लड़का या लड़की मनचाहा धंधा सीखने योग्य वने। परंतु साथ ही विद्यार्थीको यह आश्वासन भी दिया जाता है कि यदि वह किसी और धंधेमें सफल न हो सके, तो भी कम-से-कम कातने-वुननेका धंधा करके तो अपना गुजर चला ही सकेगा। अिसके अलावा यह वात भी है कि किसी अपढ़की अपेक्षा ही नहीं, परन्तु केवल आजकलकी पाठशालाओंमें पढ़े हुअे विद्यार्थीकी अपेक्षा भी वह किसी कामको ज्यादा अच्छी तरह कर सकेगा; और जिससे दोनों अपरिचित हों अुसे सीख लेनेमें वह अधिक होशियार सावित होगा। यदि यह परिणाम न निकले तो समझना चाहिये कि शिक्षामें कहीं न कहीं दोष है।

अिस प्रकार, यह केवल साधारण शिक्षा और अुद्योगकी शिक्षा नहीं है और न (अुद्योगके मारफत या स्वतंत्र रूपमें) केवल अुद्योगकी शिक्षा है, परंतु अुद्योग द्वारा पूरी शिक्षा देनेकी कल्पना है। अैसा हो सकता है कि अविवेकसे हम अिस कल्पनाको विगाड़ दें या हास्यास्पद दिखाअी देनेवाला स्वरूप दे दें। यह अनुभवहीनता अथवा नासमझीका परिणाम होगा। परंतु अिससे डरनेकी जरूरत नहीं। अनुभव अुसे सुधार देगा। मूल वस्तु यह है कि जीवनमें चल रही कुदरती पद्धतिको शास्त्रीय रूप देनेका यह प्रयत्न है और अिस रूपमें यह योजना पहली ही बार शिक्षाशास्त्रियोंके सामने रखी गअी है। यह भी याद रखना चाहिये कि अुद्योगके सिवा जिस कुदरत और समाजके बीच बालक रहता है, अुसे भी शिक्षाका साधन बनाने पर अिसमें जोर दिया गया है।

चरखा-संघने हाथ-कताअी और हाथ-बुनाअीके धंधेको देशमें फैलाया है। अिसमें चरखा-संघका हेतु किसी कंपनीकी तरह अिन अुद्योगोंसे नफाखोरी करना नहीं है, परंतु देशमें धन पैदा करनेके साथ अुसे पैदा करनेवालोंकी स्थिति सुधारना है। अिसलिअे चरखा-संघको कातने-बुननेवालोंका शोषण करनेकी नीति स्वीकार नहीं है। जो चीज चरखा-संघ बड़ी अुम्रके लोगोंमें कर रहा है, वही तालीमी संघको देशके बालकोंमें करनी है। बालक छोटे जरूर हैं, परंतु अिसलिअे यह जरूरी नहीं कि वे घरमें या शालामें बेकमाअू और बेअुपजाअू (unproductive) बन कर बैठे रहें। देशका धन बढ़ानेमें वे भी हाथ बंटा सकते हैं। परंतु अिस काममें अुन्हें लगानेमें हमारी दृष्टि स्पष्ट होनी चाहिये। वह यह कि जिस काममें अुन्हें लगाया जाय अुसमें अुन्हें लाभ होना चाहिये। अिसलिअे यह काम धंधा चलानेवाली संस्थाओंका नहीं है। अिसे स्वयं सरकारको या तालीमी संघ और विद्यापीठ जैसी संस्थाओंको करना चाहिये।

'अूर्मि', अक्तूबर १९३८

६

अुद्योग द्वारा शिक्षा

[गुजरात विद्यापीठके शिक्षक-प्रशिक्षण वर्गके सामने दिये हुअे संशोधित भाषण।]

गांधीजीने अुद्योग द्वारा शिक्षाका अेक नया विचार देशके सामने रखा है। अुसे पेश करते समय अुन्होंने कहा था कि यह मेरी आखिरी विरासत है और मुझे लगता है कि अिससे अधिक महत्त्वकी भेंट मैं देशको नहीं दे सकता। स्पष्ट है कि अैसी प्रस्तावनाके साथ पेश की गअी योजनाका हमें भी गंभीरतासे अध्ययन करना चाहिये। हम देखें कि अुनके विचारोंमें नया क्या है।

हम दो प्रकारकी शिक्षासे परिचित हैं। पुस्तकोंकी शिक्षा और अुद्योगकी शिक्षा। हम कहते हैं कि बढ़अी, लुहार, कुम्हार, रंगरेज, अिंजीनियर वगैराके काम सीखनेवाले अुद्योगकी शिक्षा ले रहे हैं। आप सब औद्योगिक शिक्षाके शिक्षक नहीं हैं। आपके विद्यार्थीसे कोअी पूछे कि तुम क्या जानते हो, अथवा आपसे पूछे कि आप क्या पढ़ाते हैं, तो अुत्तर मिलेगा कि दूसरी, चौथी या छठी किताब, फलां भूगोल, अमुक अितिहास, गणितका अमुक भाग आदि। अर्थात् कुछ पुस्तकीय विद्यायें विद्यार्थी जानते हैं और आप अुन्हें पढ़ाते हैं।

कुछ जगहों पर पुस्तकों और अुद्योग दोनोंकी शिक्षा दी जाती है। अैसी शालाका विद्यार्थी (अुदाहरणके लिअे) कहेगा कि मैं पांचवीं किताब पढ़ता हूं और अिसके सिवा बढ़अीका काम सीखता हूं। यह नहीं कहा जा सकता कि अुसकी पुस्तक-शिक्षाके विषयों और अुद्योगके विषयोंके बीच कहीं संबंध आता ही होगा। अुदाहरणार्थ, यह हो सकता है कि अुसे गणितमें अितनी शक्करमें अितनी रेत अथवा अितनी गैलन शराबमें अितना गैलन पानी मिलानेसे मिश्रणका या नफे-नुकसानका क्या अनुपात आयेगा यह जांच करनी हो। भूगोलमें वह अमरीका महाद्वीपके विषयमें

सीखता हो और अितिहासमें बावरके विषयमें पढ़ रहा हो; और विज्ञानमें आवाज या विजलीका विषय सीखता हो। अिन सबका बढ़अीके काममें कोअी संबंध नहीं हो सकता। अिस प्रकार पुस्तकोंके विषयको पुस्तकशालामें और अुद्योगके विषयको अुद्योगशालामें अलग करके रखा जाता है। पुस्तकशालाका शिक्षक अुद्योगशालाके शिक्षकके और अुद्योग-शिक्षक पुस्तक-शिक्षकके विषय नहीं समझ सकता।

यह ढंग अशास्त्रीय है, यह समझानेकी शायद ही जरूरत होनी चाहिये। बालक जो जो विषय सीखे अुनका परस्पर काफी संबंध होना चाहिये। जो अनेक वस्तुअें वह सीखता हो, अुनमें से महत्त्वकी वस्तुअोंके आसपास दूसरे विषय गुंथे होने चाहिये। अेक विषयमें से दूसरा विषय जुड़कर निकलना चाहिये।

क्या यह संभव है? यह संभव है और अैसा ही होना चाहिये, यही बतानेका वर्धा-योजनाका प्रयत्न है।

अुद्योग द्वारा शिक्षा अुसका मुख्य विन्दु है। मुख्य विन्दु कहा है, अिसलिअे यह समझ लेना चाहिये कि अुसमें कुछ अुपविन्दु भी हैं। जाकिरहुसेन कमेटीने तीन विन्दुओं पर जोर दिया है: अुद्योग, समाज और कुदरत। प्रत्येक मनुष्य त्रिविध वातावरणसे घिरा रहता है। अपने जलवायुके वातावरणसे, अपने सामाजिक वातावरणसे और अपने औद्योगिक वातावरणसे। जलवायु और समाज मिलकर अुसके अुद्योग पर असर डालते हैं। परंतु अेक बार अुसके स्थिर हो जानेके बाद अुसके जीवनका अधिकतर भाग अुसके औद्योगिक वातावरणसे घिरा रहता है। वही अुसके जीवनका सबसे बड़ा आधार बनता है। अिस प्रकार व्यवहारमें अुद्योग मनुष्यके बाह्य जीवनका मुख्य विन्दु है और समाज तथा कुदरत दूसरे दो अुपविन्दु हैं, यह वर्धा-योजनामें कहा गया है। अिस मुख्य विन्दु पर ध्यान खींचकर अुसके आसपास शिक्षाको गूंथना चाहिये, अैसा पहली बार गांधीजीने बताया है।

परंतु अुद्योग तो अनेक हैं। अुनमें से शिक्षाके लिअे कौनसा चुना जाय? और शिक्षा भी किसको? बड़ी आयुके स्त्री-पुरुषोंको नहीं; परंतु सातसे चौदह वर्षके छोटे बालकोंको। अुदाहरणार्थ, अिसमें मोटर बनाने या

छत पर डालनेके टीन बनानेका अुद्योग नहीं सोचा जा सकता। साथ ही अिसमें थोड़ेसे शहरी बालकोंका विचार नहीं करना है, परंतु दूर दूरके गांवोंमें बसनेवाले करोड़ों गरीब और पिछड़े हुअे बालकोंका विचार करना है। अिस प्रकार हमें अैसे अुद्योगोंका विचार करना है, जो करोड़ों बालकोंके लिअे सोचे जा सकें और जिनके आसपास अुनकी सारी शिक्षा गूंथी जा सके।

अैसे अुद्योगोंमें पहले नम्बर पर और अधिकसे अधिक व्यापक खादीका अुद्योग ही नजर आता है। यह सच है कि खेती हमारे देशका पहले नम्बरका और सबसे अधिक व्यापक व्यवसाय है, परंतु यह व्यवसाय बालकोंका नहीं है। अिसमें बहुतसे बड़ोंके साथ थोड़ेसे बालक सहायकके तौर पर काम कर सकते हैं, परंतु अुनकी बराबरी नहीं कर सकते। बारह वर्षकी अुम्रसे कमके बालक अिसमें महत्त्वपूर्ण भाग नहीं ले सकते। अिसे बारहों महीने चलानेके लिअे जो प्राकृतिक अनुकूलतायें और जमीनका साधन चाहिये, वे सब जगह नहीं मिल सकते। अिस प्रकार महत्त्वका व्यवसाय होने पर भी शिक्षाके माध्यमके रूपमें अुसका अुपयोग मर्यादित क्षेत्रमें ही हो सकता है। दूसरे व्यवसाय अितने व्यापक भी नहीं हैं; और अुनमें भी बालकोंकी अुम्र तो बाधक होती ही है। अिसलिअे खादीका अुद्योग ही अधिकसे अधिक व्यापक और अनुकूल मालूम हुआ है।

परंतु अिसके साथ अुद्योग द्वारा शिक्षाके माध्यमके रूपमें भी खादी-अुद्योगमें आश्चर्यजनक सुविधायें हैं। अत्यन्त प्राचीन कालसे लेकर आज तक कपासने हमारे देशका अितिहास निर्माण करनेमें बड़ा भाग अदा किया है। अैसा मालूम होता है कि कपासकी खेती और अुसे कातने, बुननेकी खोज हमारे ही देशने पहले की होगी। 'पेड़ पर अुगनेवाली अून' और अुसके महीन और मुलायम कपड़े देखकर विदेशी आश्चर्यचकित हो गये थे और अुससे भारतका कपड़ेका आन्तर-राष्ट्रीय व्यापार जमा था। अुसने विदेशियोंको भारतकी ओर आकर्षित किया और अुसके कारण जो अनेक राजनीतिक परिवर्तन हुअे अुनका परिणाम आजका हमारा भारत है। अिस प्रकार खादीके साथ हमारे देशका अितिहास गुंथा हुआ है। अिसी प्रकार भारतके बाद जिन जिन देशोंने कपासकी खेती या कपासके

कपड़ेके अुद्योगका विकास किया अुन देशोंका विचार करें, तो लगभग सारे जगतके अितिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाज-रचना तथा राजनीतिके अनेक प्रश्नोंमें हमें जाना पड़ेगा। कपासने मानव-जीवनमें कितना अधिक महत्त्वका भाग अदा किया है।

कपासकी खेतीसे लेकर विविध रंगोंसे छपी हुअी खादी तकका सारा ज्ञान देने लगें, तो अुसमें विज्ञान और गणितके कितने विषयोंका अध्ययन करना पड़ेगा, यह विचार करना कठिन नहीं। यंत्रशास्त्र, पदार्थविज्ञान, रसायनशास्त्र, कृषिविद्या, वनस्पति-विद्या, जंतुशास्त्र, अंकगणित, भूमिति आदिके विविध प्रकरण अिसमें से अनिवार्य रूपमें पैदा होंगे। खादी द्वारा यह शिक्षा किस हद तक दी जा सकती है, यह परेशानी होनेके बजाय किस हद तक शिक्षा देकर संतोष माना जाय, यही परेशानी हो सकती है।

अिसके सिवा अिसकी आध्यात्मिक संभावना भी कम नहीं है। अिसमें अहिंसा-प्रधान संस्कृतिकी बुनियाद है। जोर-जबरदस्ती नहीं, परंतु परिश्रम ही अिसका मूल मंत्र है। कबीर जैसे जुलाहेने अिसमें से केवल खादीके थान नहीं निकाले, परंतु धर्म और तत्त्वज्ञानके सिद्धांत भी बुनकर बताये हैं। हमारी भाषाकी कितनी ही कहावतें और रूढ़ प्रयोगों तथा हमारे जीवनकी कितनी ही रूढ़ियोंके आसपास चरखा, पींजन, करघा, रंगाअी-काम वगैरा गुंथे हुअे हैं।

मैं यहां केवल दिग्दर्शन ही करा रहा हूं। व्यवहारमें यह कैसे चलेगा, अिसका आधार शिक्षकों पर है। यह अभी तक व्यवहारमें सांगोपांग व्यवस्थित करके दिखाया नहीं गया है। अिसीलिअे मैं मानता हूं कि अिसका प्रारंभ करनेके लिअे शिक्षा-विभागके अनुभवी, कुशल और भावनावाले शिक्षक पहले चुने गये हैं। अिसलिअे अिस शिक्षाकी सफलताका बहुत कुछ आधार आप लोगों पर है। आपको अपनी कल्पना-शक्तिका पूरा तरह अुपयोग करके अुद्योग और अलग अलग विषयोंका कुदरती मेल साधना है। साथ ही दूसरे दो अुपबिन्दुओंको भी भूलना नहीं है। अिन दो अुपबिन्दुओं पर मैं बोल नहीं रहा हूं, क्योंकि वे नवीन नहीं हैं। अिसका अर्थ यह नहीं कि अुन्हें मैं भुलाना चाहता हूं।

अिसके लिअे आपको स्वयं अुद्योगमें पूरी प्रवीणता प्राप्त करनी होगी। केवल पुस्तक-शिक्षकोंसे यह काम नहीं होगा। यह असंभव नहीं कि कोअी बालक आपसे भी अुद्योगमें बढ़ जाय, क्योंकि आप देरसे प्रारंभ कर रहे हैं। परंतु आप अुद्योगमें काफी कुशलता प्राप्त नहीं करेंगे तो काम नहीं चलेगा।

तकली पर आपको दायें बायें दोनों हाथोंकी पूरी गति प्राप्त कर लेनी चाहिये। अिसी तरह रुअी पींजने और चरखा चलानेमें। अिन सबके लिअे जिसे अरुचि होगी वह यह प्रयोग सफल नहीं कर सकता। मैं मानता हूं कि आप तो अुत्साह और श्रद्धासे आये हैं, अिसलिअे आपको अिस बारेमें बहुत कहनेकी जरूरत नहीं।

हरिजनबंधु, २६–३–'३९

७

जीवन-निर्वाहकी शिक्षा

हम सब जानते हैं कि हमारा देश शिक्षामें बहुत ही पिछड़ा हुआ है। अिसलिअे कितने ही वर्षोंसे हम यह मांग कर रहे हैं कि शिक्षाका प्रसार करो, शिक्षाका प्रसार करो। कांग्रेस सरकार बननेके बाद स्वाभाविक रूपमें हम अिसके लिअे अधिक अधीर हो गये हैं।

परन्तु दूसरी ओर जो लोग शिक्षा पाये हुअे हैं, अुनमें से बहुतोंकी स्थितिकी जांच करें तो हमें निराशा होती है। शिक्षा पढ़ाती अधिक है या भुलाती अधिक है, यह अेक प्रश्न ही है। हम जानते हैं कि जो पढ़ते हैं वे बापदादोंका धंधा भूल जाते हैं, और अुसके बदलेमें बहुत ही थोड़े लोग कोअी नया धंधा सीखते हैं। किसानका पढ़ा-लिखा लड़का खेतीके बारेमें कुछ नहीं समझ सकता। कुम्हारका अपढ़ लड़का मिट्टीके घड़े अुतार सकता है, परन्तु अुसके पढ़े-लिखे लड़केको मिट्टी गूंधना भी नहीं आता। दरजीका शिक्षित लड़का न सी सकता है, न नाप ले सकता है। पढ़नेके बाद अिन सबकी दृष्टि कोअी क्लर्कीकी नौकरी प्राप्त करने पर ही

जाती है। हमारी भाषा (गुजराती) में कारकुन और शिक्षक दोनों 'महेता' (मुंशी) कहलाते हैं, क्योंकि दोनोंका कागज-कलमके साथ सम्बन्ध रहता है। बहुतसे अपढ़ माता-पिता अिस परिणामको समझते हैं, अिसीलिअे अुन्हें अपने बालकोंको पढ़ानेका अुत्साह नहीं रहता। हमारे देशमें शिक्षाका परिणाम अुलटा यह आया है कि कअी प्रकारका परम्परासे चला आया ज्ञान भी खतम होता जा रहा है। बुढ़ियाका घरेलू वैद्यक बुढ़ियाके साथ मर जाता है, क्योंकि अुसकी पढ़ी-लिखी लड़की अुसमें रस नहीं लेती। अिसी तरह कितने ही प्रकारके कला और कारीगरीके काम किस प्रकार होते थे, यह जाननेवाले अब नहीं रहे।

शिक्षितोंकी दशा कुछ संतोषजनक हो, तो हम कहेंगे कि भले यह पुराना ज्ञान गया तो गया। परन्तु अैसी बात भी नहीं है। लड़का चार किताब पढ़ लेता है और प्रश्न खड़ा हो जाता है कि अब क्या किया जाय? चार वर्षमें पिताके धंधेसे अरुचि हो जाय, अितना ही वह पढ़ता है। अब कोअी मार्ग सूझता नहीं, अिसलिअे आगे पढ़नेका निश्चय होता है। अिस प्रकार वह मैट्रिक तक चला जाता है और फिर वहीका वही प्रश्न पैदा होता है। लेकिन फिर भी कुछ नहीं सूझता। और आशा तो अमर है। अिसलिअे वह कॉलेजमें जाता है। अिस प्रकार जीवनके बीस-बाअीस वर्ष बिना किसी ध्येयके चले जाते हैं। जीवनके बीस-बाअीस अमूल्य वर्ष अनिश्चितताका संस्कार मजबूत करनेमें ही बीतें, तो सारे जीवन पर अुसका कैसा परिणाम होगा?

अिसके सिवा हमारी शिक्षा अेक और दृष्टिसे भी पंगु सिद्ध हुअी है। हमने जो कुछ पढ़ा है, वह अपने अपढ़ माता-पिता, भाअी-बहन या पत्नीको हम नहीं दे सकते। बालक पाठशालामें जो कुछ सीखता है अुसकी बात वह घर जाकर नहीं कर सकता। अुलटे, यदि अुसकी मां पूछे कि 'क्यों बेटा, तू क्या पढ़ता है, मुझे समझा तो', तो बालक बोलेगा, 'वह कठिन है, तेरी समझमें नहीं आयेगा।' शालामें हम शास्त्रीय विज्ञान जानते और प्रयोगशालामें अुसका प्रयोग करते हैं, परंतु घर पर अुसका कोअी अुपयोग नहीं कर सकते। ज्ञान संक्रामक होना चाहिये। अिसके बजाय वह प्राप्त करनेवालेमें ही बंद रहता है। अिसका परिणाम

यहां तक होता है कि आजकलका ग्रेज्युअेट बीस वर्ष पहलेके ग्रेज्युअेटको भी अपढ़-जैसा ही समझता है।

शिक्षाकी यह स्थिति है। अब अशिक्षितोंको देखें तो अपढ़ बालक सात-आठ वर्षकी अुम्रसे ही अपने माता-पिताकी कुछ न कुछ सहायता करने लगता है। पांच-छह वर्षका होते ही जब मां काम पर जाती है, तब वह छोटे भाअी-बहनोंको संभालता है। जरा बड़ा होते ही ढोरोंको संभालने लगता है और घरके छोटे-छोटे काम कर डालता है। बारह वर्षका होने पर बापके साथ काम करने जाता है, और सोलहवें वर्षमें तो घरका भार अुठाने लायक माना जाता है। अिस तरह पांच-छह वर्षमें ही वह कुटुम्बका बोझा हलका करनेमें सहायक होता है। भले ही प्रत्यक्ष मजदूरीके रूपमें अुसके हाथमें कुछ भी न रखा जाता हो, परंतु अुसके कामका आर्थिक मूल्य तो है। हमारा देश अितना गरीब है कि कुटुम्ब यह लाभ छोड़ नहीं सकता। माता-पिता कोअी अपने बालकोंके शत्रु नहीं होते। साथ ही अपढ़ होने पर भी वे बिलकुल मूढ़ हैं, यह समझनेका भी कारण नहीं है; परंतु आर्थिक परिस्थितिसे विवश हो जानेके कारण ही वे बालकोंको आसानीसे शालामें नहीं भेज सकते।

फिर भी, हम अनिवार्य शिक्षाका विचार करते हैं, क्योंकि देशको शिक्षा दिये बिना भी काम नहीं चल सकता। वर्तमान शिक्षाके बारेमें असंतोष हो तो अुसे सुधारें, नअी शिक्षाके विषयमें सोचें, परन्तु शिक्षाहीन स्थिति कायम नहीं रखी जा सकती।

अब अनिवार्य शिक्षाके अर्थका विचार करें। अिसका अर्थ यह है कि लगभग चौदह वर्षका हो तब तक बालक कम-से-कम छह घंटे रोज सरकारके अधिकारमें रहे। माता-पिताको अुसे सरकारको सौंपना ही पड़ेगा। अिस प्रकार जो सरकार लोगों पर बन्धन लगाती है, अुस पर दो जिम्मेदारियां सहज ही आ पड़ती हैं। सरकार जनताकी हैं, अिसलिअे ये दो जिम्मेदारियां अुठानेकी तैयारी हो तो ही वह शिक्षाको अनिवार्य करके अपना अस्तित्व बनाये रख सकती है। अेक जिम्मेदारी यह है कि माता-पितासे बालकको ले लेनेके फलस्वरूप अुन्हें जो आर्थिक असुविधा अुत्पन्न हो, अुसका बदला वह बालकके द्वारा ही किसी न किसी तरह चुका दे; और दूसरी यह कि

सरकार माता-पिताको यह आश्वासन दे कि अिस प्रकार शिक्षा पाया हुआ बालक शिक्षाके परिणामस्वरूप बेकार नहीं बनेगा। मतलब यह कि वह बालक यदि सरकारको अपना परिश्रम देनेको तैयार हो, तो अुससे काम लेकर अुसे जीवन-निर्वाह होने लायक मजदूरी देनेकी सरकार तैयारी रखे।

देशकी परिस्थिति, गरीबी, बेकारी, अब तककी शिक्षाकी त्रुटियां और ये दो जिम्मेदारियां, अिन सबका अेक साथ विचार करने पर अिसका अुपाय 'अुद्योग द्वारा शिक्षा' ही सूझ सकता है।

अुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ किसी धंधेकी पूरी तालीम नहीं है। अिसका अर्थ यह भी नहीं है कि बालक जो अुद्योग करता हो, वही धंधा अुसे जीवनमें करना है। बालकको हम कक्का घुटवाते हैं और पहाड़े रटवाते हैं, अिसका अर्थ यह थोड़े ही है कि वह बालपोथी और पहाड़ोंकी पुस्तक पढ़कर ही रह जायगा? जो पहली, दूसरी या अन्य पुस्तकें वह वर्गमें पढ़ता है या सवाल करता है, अुनीमें अुसकी पुस्तकीय शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती। यह कक्का और पहाड़े अुसे लेखन-वाचन और गणितकी कुंजियां जरूर देते हैं। परंतु यह शिक्षा अुसे किसी तरह अुद्योगमें लगनेकी कुंजी नहीं देती; क्योंकि सारी शिक्षामें अुससे किसी अुद्योगके मूलाक्षर अथवा पहाड़े रटवाये ही नहीं जाते। अुलटे अुसका मन अिस ढंगसे तैयार होता है कि अुद्योगके प्रति अुसे अरुचि हो जाय।

अतः अुद्योग द्वारा शिक्षा अिस त्रुटिको सुधारनेके लिअे है। जड़ और कुशल दोनों प्रकारकी मजदूरी करनेकी बालकको आदत पड़े और बनी रहे, अुसे करनेकी जानकारी हो, अुनमें अुसे रस आवे, किसी भी अुद्योगमें लगने और अुसे सीख लेनेमें अुसे प्रतिष्ठा मालूम हो, यह अुद्योग द्वारा शिक्षाका अेक अंग है।

परन्तु यह भी कअी तरहसे किया जा सकता है। अैसी-अैसी युक्तियां ढूंढ़ी जा सकती हैं, जिनसे बालक सुबहसे शाम तक तोड़-फोड़ करता रहे, कठिन परिश्रम करे, अुसके द्वारा कुछ हद तक अुसका शरीर और अिन्द्रियां भी कसें, और फिर भी अुसे अुद्योगका अर्थात् सीखनेके लिअे

आवश्यक किसी वस्तुके अुत्पादनका वातावरण न मिले। यह सब अेक प्रकारके खेलकी तरह ही किया जाय।

तब अुद्योग द्वारा शिक्षामें अुद्योगका अर्थ जीवनमें महत्त्वका भाग अदा करनेवाला कोअी अुद्योग समझना चाहिये। और अैसे अुद्योग द्वारा शिक्षाकी योजना करनी है। दूसरे शब्दोंमें यह अुत्पादक अुद्योगकी अथवा जीवन-निर्वाहकी शिक्षा कही जा सकती है।

अिसलिअे बालक शालामें आकर किसी न किसी अुद्योगमें लग जाय। अिस अुद्योगका अुसके और जिस समाज या गांवमें वह रहता है अुसके जीवनमें महत्त्वका स्थान होना चाहिये। शालामें आकर अुसे अैसा कुछ करना और सीखना चाहिये, जिससे अुसके माता-पिता भी थोड़े ही समयमें जान लें कि अुसका शाला जाना स्वागतयोग्य है; वह घरमें कुछ न कुछ लानेकी शक्ति प्राप्त कर रहा है; वह कुछ अैसा पढ़ रहा है जिसकी छूत घरमें लगे तो घरको भी लाभ होगा।

आजके ग्रामजीवन पर दृष्टि डालें तो चारों ओर निराशा फैली हुअी दिखाअी देती है। अपनी आर्थिक चिन्तायें कैसे मिटें, अिसका किसीको कोअी मार्ग नहीं सूझता। अिस निराशाकी ग्लानिको मिटानेके लिअे लोग गलत मार्ग पर लग जाते हैं। निराशाको भूलनेके लिअे वे सट्टा, जुआ, नशा आदिके व्यसनोंमें फंसते हैं। जीवनकी आवश्यकतायें पूरी करनेवाला अुद्योग ही अिस निराशाको मिटानेका अेकमात्र अुपाय है।

माता-पिता देखेंगे कि बालक शाला जाकर आलसी नहीं, परन्तु काम करनेवाला बनता है। अपने कपड़ोंके लायक सूत तो वह थोड़े ही समयमें कातने लगता है; फुरसतके समयमें तकली चलाता है, पींजन चलाता है या कोअी न कोअी सफाअी-काम करता है, फुलवाड़ी लगाता है या अैसा ही कुछ करनेमें मशगूल रहता है। अिसके अलावा, मैं तो यह भी चाहूंगा कि बालककी मजदूरीका कुछ हिस्सा अुसे खुराकके तौर पर मिले। मुझे निश्चित ही अैसा लगता है कि अधिकांश बालकोंकी सुस्ती, शारीरिक या मानसिक अचपलता और मंद बुद्धिका कारण अुचित पौष्टिक खुराककी कमी है। वैसे भी सरकारने गांधीजीका स्वावलंबी शिक्षाका आग्रह स्वीकार नहीं किया है। अिसका अर्थ यह है कि वह शिक्षाका खर्च दूसरी तरह

भी निकालनेकी हिम्मत करेगी। तो पैदावारका अेक अंश वालकको देनेकी वात गंभीरतासे विचारने जैसी है। अैसा हो तो माता-पिताको वालकका स्वयं घरसे गैरहाजिर रहना नहीं खटकेगा। अुन्हें मवेशी संभालनेकी परेशानी होगी। अिसके लिअे वे दूसरा रास्ता खोजेंगे। परन्तु वे वालकको शाला जानेसे रोकना नहीं चाहेंगे। अिसके सिवा यदि अुन्हें यह विश्वास हो जाय कि वालक और कुछ चाहे न कर सके, लेकिन कातने-वुननेकी मजदूरी करके तो पेट जरूर भर सकेगा, तो अुन्हें अुसके भविष्यकी चिन्ता नहीं रहेगी। अिस प्रकार अुद्योग द्वारा शिक्षा अुनके लिअे आशाका स्थान वन जायगी।

हरिजनवन्धु, २–४–'३९

८

नअी तालीमका शिक्षक

चरखा-संघके नामसे आप सब परिचित हैं। आप अुसे खादी अुत्पन्न करनेवाली संस्थाके रूपमें जानते हैं। अिसका अंग्रेजी नाम अधिक सूचक है। अुसका अर्थ होता है कातनेवालोंका संघ। यह संस्था साधारण अर्थमें व्यापारिक संस्था नहीं है। मजदूरीसे हाथ-कताओ और बुनाओ करवा कर तथा लोगोंकी देशभक्तिकी भावनासे लाभ अुठाकर अेक प्रकारके कपड़ेका व्यापार हथिया लेना और नफा कमाना अुसका अुद्देश्य नहीं है। अिसके कार्यकर्ताओंको जितनी खादी वे अुत्पन्न करायें या बेचें अुसके हिसाबसे दलाली या नफेमें हिस्सा नहीं दिया जाता। अुन्हें तो सबको निश्चित वेतन ही मिलता है। अिसका कारण यह है कि चरखा-संघ खादीका व्यापार करनेके लिअे खादीके काममें नहीं पड़ा है, परन्तु कताओ द्वारा गरीब ग्रामीणोंकी आर्थिक और सामाजिक सेवा करनेके लिअे अिसमें पड़ा है। अुसके कार्यकर्ताओंका कर्तव्य सस्तेसे सस्ते मजदूर ढूंढ़कर खादीके ढेर पैदा कराना और अुन्हें महंगीसे महंगी कीमत पर बेचना नहीं है; न निश्चित मजदूरी ओमानदारीके साथ चुका देनेसे ही अुनका

कर्तव्य पूरा हो जाता है। परन्तु कार्यकर्ताओंसे यह अपेक्षा रखी जाती है कि वे कातनेवालों और बुननेवालोंके जीवनमें प्रवेश करें, अुनके जीवनको सुधारें और अुनमें जागृति पैदा करें।

नअी तालीमके शिक्षकोंका कर्तव्य भी अिससे मिलता-जुलता है। अुनका भी संपत्ति अुत्पन्न करनेवाले कार्यकर्ताओंका अेक समूह है। अुनका अुद्देश्य व्यापार करना नहीं, परन्तु अिस संपत्तिको पैदा करनेवालोंका हित साधना और अुनकी सेवा करना है। यहां जिनके द्वारा संपत्ति पैदा करनी है, वे बड़ी अुम्रके स्त्री-पुरुष नहीं हैं; परन्तु छह-सातसे चौदह-पंद्रह वर्षके लड़के-लड़कियां हैं। अिनके लिअे शिक्षाकी दृष्टिसे, गांवोंकी दृष्टिसे और समाजकी दृष्टिसे अनुकूल कुछ धंधे ढूंढ़े गये हैं या ढूंढ़े जायंगे। अिन कार्यकर्ताओं या शिक्षकोंसे यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे ये धंधे अुत्तम ढंगसे सिखायें, करायें और अिस निमित्तसे बालकोंके जीवनमें प्रवेश करके अुन्हें जीवनोपयोगी शिक्षा दें तथा दूसरे प्रकारसे अुनका जीवन सुधारें। जहां खादीको अैसे धंधेके रूपमें चुना गया होगा, वहां अैसा मानिये कि वह चरखा-संघकी अेक स्वतंत्र और विशिष्ट शाखा है। अेक अेक शाला अेक अेक अुत्पत्ति-केन्द्र है। अुसमें सात-आठ संस्कारी, सुशिक्षित और खास तालीम पाये हुअे कार्यकर्ता — खादीसेवक — रखे गये हैं। चरखा-संघकी तरह ही अिनके वेतन निश्चित हैं और अुन्हें स्वतंत्र रूपमें मिलते हैं। फिर भी, जैसे चरखा-संघ अपने कार्यकर्ताओंसे यह अपेक्षा रखता है कि वे कत्तिनोंके हितोंकी रक्षा करें और अुनके हितार्थ ही अिस ढंगसे काम करें कि कत्तिनोंकी कुशलता बढ़े, मालका बिगाड़ न हो और कम-से-कम अुस केन्द्रका खर्च वहांसे निकल आये, अुसी तरह शिक्षा-विभाग भी अपने कार्यकर्ताओंसे अैसी ही अपेक्षा रखेगा। अिसमें कुशलता, बिगाड़ वगैराके मामलेमें यह बात अवश्य ध्यानमें रखी जाय कि अुन्हें बालकोंके द्वारा काम लेना है।

तब अैसा समझिये कि अेक शालाका अर्थ सात-आठ बड़े कार्यकर्ताओं और कोअी दो सौ बालकोंका अेक बड़ा कुटुम्ब है। अुन्हें पूंजीके सिवा दूसरा खर्च खादी पैदा करके निकालना है। और पासमें जो दो-चार बीघा जमीन है, अुसमें थोड़े-बहुत फलफूल, शाकभाजी भी पैदा करना है;

अिसकी कीमत शिक्षा और मनोरंजनकी दृष्टिसे तो बड़ी होगी, परन्तु आजके खयालसे तुच्छ मानी जायगी। कपास ओटनेसे लगाकर अेक खास प्रकारकी बुनाअी तकका धंधा करनेकी अिसमें छूट है। बालक अलग-अलग अुम्रके होंगे। अुनकी अुम्रका खयाल रखकर ही अुनसे काम लिया जा सकता है। जो काम कराया जाय अुसमें अिन बालकोंके हित और शिक्षाकी जान करनेकी जिम्मेदारी भी है। अिन मर्यादाओंके बीच काम करना है।

अिसमें अुम्रके कुछ स्वाभाविक विभाग जरूर होंगे। प्रत्येक कार्यकर्ता अेक-अेक समूहको संभालेगा। जिस समूहने जो काम कराना हो अुस कामकी वह देखरेख रखे और बालकोंके साथ अुस काममें शरीक हो। अुदाहरणार्थ, कभी कभी वह छोटे बालकोंके साथ कपास साफ करने बैठे। अुस समय वह अुन्हें कपास साफ करनेका तरीका बताये; साथ साथ बिना कचरेकी कपास अिकट्ठी करनेकी बात कहे। कपासमें आनेवाले कचरेके प्रकार समझाये। अपने पास जो कपास हो अुसकी किस्म वगैराके बारेमें बालकोंसे कहे। शालामें और किसी किस्मकी कपास हो तो अुसके साथ अपनी कपासकी तुलना कराये। अिसी तरह अलग-अलग समूहोंमें खादी-सम्बन्धी अलग-अलग क्रियाअें होती रहें; और अुनके सम्बन्धमें विविध जानकारी बालकोंके शिक्षक अुन्हें दें। अुनमें काम आनेवाले औजारों, साधनों और यंत्रों आदिका ज्ञान, गणित और विज्ञान भी बताया जाय। अिस प्रकार खादीको केन्द्रमें रखकर बालकोंको विविध प्रकारसे पढ़ा-गुना और विविध जानकारीसे पूर्ण बनाया जाय। अिसीमें से खादीकी और गांवोंकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्यायें भी अुत्पन्न होंगी। अिसलिअे अिसमें देशकी वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओंके प्रश्नोंकी चर्चा करनी पड़ेगी। [illegible] कामोंके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होनेसे वह केवल पुस्तकीय जानकारी रखनेवाला या 'नागरिक-धर्म' की पुस्तक पढ़ा हुआ नागरिक नहीं बनेगा, परन्तु व्यवहारमें पढ़ा हुआ नागरिक बनेगा।

यह तो केवल अुद्योगका विचार करके चित्र खींचा गया है। परन्तु अिसके सिवा जिस कुदरत और समाजके बीच बालक रहता है, अुसका विचार करके भी अुसे विविध प्रकारसे कुशल बनाना होगा।

अैसा भी अेक वर्ग है जो अुद्योग द्वारा शिक्षाकी हिमायत करता है, परन्तु अुसमें अुद्योगसे बननेवाली वस्तुको महत्त्व नहीं देता। वह बिलकुल निरुपयोगी और बनाकर फेंक देने जैसी भी हो सकती है; शायद थोड़े समय शोभा बढ़ानेके लिअे या कुतूहलसे आल्मारीमें दिखानेकी भी हो सकती है। वे यह मानते हैं कि जिस शिक्षासे बालकके हाथ-पैरोंको तालीम मिले और अुसे मनोरंजनके साथ शिक्षा मिले तो काफी है। अिसलिअे वे मानो सिद्धान्तके तौर पर यह मानते हैं कि अुद्योग द्वारा शिक्षामें बिगाड़ तो होता ही है। वर्धा-योजना जिस शिक्षाकी हिमायत करती है, अुसमें बिगाड़का अनिवार्य स्थान नहीं है। अनिवार्य रूपमें कुछ न कुछ बिगाड़ हो और अुसे हिसाबमें लेना पड़े, यह अलग बात है; परन्तु बिगाड़ ध्येयके रूपमें नहीं होना चाहिये। अिसी तरह केवल शोभा या कुतूहलको महत्त्वका स्थान नहीं मिलना चाहिये। आप अपनेको अेक अुत्पत्ति-केन्द्रके कार्यकर्ताके रूपमें समझने लगें, तो यह बात तुरंत ध्यानमें आ सकती है। अथवा, यों सोचिये कि कोअी बढ़अी या दर्जी अपने बालकको अपना धंधा करते-करते सिखाये, तो वह बिगाड़के लिअे लकड़ी या कपड़ेकी कितनी सुविधा अुसे देगा? जलानेके टुकड़े या कतरनों पर वह थोड़े दिन बालकको खेल करने देगा, परन्तु बादमें वह अुसे छोटे-छोटे किन्तु अैसे काम सौंपेगा, जिनके लिअे अुसे मजदूरी मिलनेवाली हो। आज बनाया और कल जला दिया, अैसी पद्धतिसे सिखाना अुसे कभी पुसायेगा नहीं। अिस-लिअे यह समझकर चलना चाहिये कि सिखानेके लिअे कच्चा माल खरीदना और अुसका अधिकतर भाग बिगाड़ खाते लिख डालना पुसायेगा नहीं।

शालामें चलाया जानेवाला धंधा भले ही आसान हो, परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि वह धंधा है, मजाक नहीं। अेक पद्धतिके रूपमें कुछ बेकार नहीं फेंका जा सकता या नहीं बिगाड़ा जा सकता।

यदि आप मेरी बात अच्छी तरह समझ गये हों, तो अब आपको यह सोचने लगना चाहिये कि आप शिक्षक न रहकर अुद्योगके कार्यकर्ता बन गये हैं। अब आप बुनाअीके धंधेमें लग गये हैं। और फिर आपके स्त्री-बच्चे भी होंगे ही। वे भी अिसमें मदद दें। अिससे शालाके बालक, आप, आपका परिवार सबकी मानो अेक बड़ी सहकारी समिति बन जायगी।

परन्तु आप तो बुनाअीका धंधा करनेवालेके अुपरान्त शिक्षक — अर्थात् ब्राह्मण — भी हैं। आपको अपना यह धर्म छोड़ थोड़े ही देना है। अिस प्रकार आपकी केवल अेक धंधा करनेकी ही जिम्मेदारी नहीं, बल्कि अुसे सिखाने और अुसका शास्त्र निर्माण करनेकी भी जिम्मेदारी है। अैसा नहीं लगता कि पहलेके ब्राह्मण केवल साहित्य, व्याकरण, तत्त्वज्ञान या कर्मकाण्डके ही शास्त्र रचते या सिखाते होंगे। द्रोण कौन थे? वे शस्त्रविद्याके शिक्षक थे। यही हाल परशुरामका था। अिसी प्रकार अनेक धन्धोंके शास्त्र भी ब्राह्मण ही रचते थे। परन्तु द्रोण स्वयं अुत्तम योद्धा न होते तो वे शस्त्रविद्या कैसे सिखा सकते थे? धंधे अैसी चीज नहीं हैं, जिन्हें अेक आदमी सिखाये और दूसरा न जाननेवाला आदमी अुनका शास्त्र बना सके।

अिसका अर्थ यह है कि नअी तालीममें यह भेद नहीं रखा जा सकेगा कि अुद्योगके शिक्षक अलग और पुस्तकके शिक्षक अलग हैं। प्रत्येक शिक्षकको धंधेकी क्रियामें कुशल होना ही चाहिये। आज हमारी स्थिति यह है कि हमारी शालामें अगर कोअी धंधा चलता होगा, तो अुसमें काम आनेवाले औजारों या यंत्रोंके भागोंके नाम तक पुस्तक-शिक्षकको मालूम न होंगे। दूसरी अनेक देश-विदेशकी बातें वह कर सकेगा; कमलके दस पर्याय बता सकेगा, विज्ञानके सूक्ष्म पारिभाषिक शब्द दे सकेगा। परन्तु चरखेके अलग-अलग भागोंके नाम अुसके विद्यार्थी पूछें तो वह नहीं बता सकेगा। अुनमें से प्रत्येकके अलग-अलग नाम खोजने और न हों तो रखनेका भी हम परिश्रम नहीं करते। नअी तालीममें यह स्थिति नहीं रहनी चाहिये। जो शिक्षक अिस प्रकार बारीकीमें जायगा, अुसे पता चलेगा कि अुद्योग द्वारा कितना भाषाज्ञान, विज्ञान, गणित वगैरा बढ़ सकता है, कितना नया साहित्य निर्माण हो सकता है, कितना बुद्धिका विकास और अुंगलियोंमें सूक्ष्मता लाअी जा सकती है और किस तरह समाजकी रचनाकी बुनियाद डाली जा सकती है। अिसका क्रान्तिकारी असर हमें हमारे अपने ही जीवनमें मालूम होने लगेगा।

हरिजनबन्धु, ९-४-'३९

९

वर्धा-शिक्षाका अेक नमूना

मेरे घरकी खिड़कीके सामने अेक सूखे हुअे पेड़का तना खड़ा था। कल सुबह मकान-मालिकके नौकरने अेक साथीकी मददसे अुसे गिरा दिया और दोपहरके बारह बजे तक करवतसे काटकर अुसके बड़े-बड़े टुकड़े कर दिये। अुसके साथ अुसकी पत्नी और पांचेक वर्षका अेक लड़का भी आया था। पत्नीने लकड़ियां अुठा ले जानेमें साथ दिया; बारह बजे काम पूरा हुआ तब लम्बा करवत भी वही अुठा कर ले गअी। जो तीन-चार घंटे अिस काममें लगे, अुतने समय तक वह लड़का भी साथ रहकर कुछ न कुछ करता रहा। छोटे टुकड़े अुड़ते अुन्हें अुठाकर वह अेक जगह रखता; साथ ही करवत चलता अुसका मजा भी देखता। बारह बजे नौकरने करवत हाथसे छोड़ा कि लड़केने तुरंत अुसे दोनों हाथोंसे घसीटकर लकड़ीके अेक टुकड़े पर चढ़ाकर टिका दिया। करवतके दांते पहले अूपरकी ओर रखे। फिर कुछ विचार आया, अिसलिअे पलट कर नीचेकी ओर कर दिये। फिर कुछ विचार आया, अिसलिअे टुकड़े परसे अुतारकर व्यवस्थित रूपमें करवतको जमीन पर लिटा दिया। फिर पासमें पड़ी हुअी रस्सी हाथमें ले ली। यह सब अुसने खुद ही किया, किसीके कहनेसे नहीं। अुलटे, अिस क्रियाके साथ वह कुछ बोलता जा रहा था।

वह अैसा कर रहा था, अितनेमें नौकरने करवत पत्नीके सिर पर रखा और अेक बड़ा लकड़ा साथीके सिर पर रखा। और सब अपने घरकी ओर विदा हुअे।

नौकर और अुसकी पत्नी अपढ़ थे। बालकको अपने कामके साथ कुछ न कुछ शिक्षा देना अुनके लिअे संभव नहीं था। वह कुछ सीखेगा, अिस दृष्टिसे वे अुसे साथ लाये ही न होंगे। वह तो मांके पीछे-पीछे चला आया होगा। परन्तु अुसे माता-पिताके काममें रस आया। यह काम अुनके जीवनके साथ संबंध रखता है और किसी न किसी तरह

आवश्यक है, यह भी अुसे जरूर पता चल गया होगा। जिसलिअे अुसने माता-पिताके कामका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया, और अपनी बालबुद्धिके अनुसार अुसमें रसपूर्वक भाग भी लिया। जिस कारणसे वह तीन-चार घंटे माता-पिताको तंग किये बिना वहां मौजूद ही नहीं रहा, बल्कि अपनी छोटी छोटी क्रियाओं और मीठी बोलीसे अुसने माता-पिताका श्रम भी मिटाया।

अिसी वस्तुको शास्त्रीय पद्धतिसे व्यवस्थित रूप दे दिया जाय, तो वह विद्या बन जाय और अुससे वर्धा-शिक्षाका शास्त्र निर्माण हो जाय।

'शिक्षण अने साहित्य', अप्रैल १९४०

१०

कमानेवाली शिक्षा

[सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलनमें पेश किया गया प्रस्ताव और अुस पर किया गया विवेचन।]

प्रस्ताव

"अिस सम्मेलनकी यह राय है कि गांवोंमें शिक्षाकी अैसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे किसी भी साधारण प्रौढ़ विद्यार्थीको वह शिक्षा पा रहा हो अुसी कालमें शिक्षाका खर्च निकाल सकने लायक मजदूरी मिल जाय। यदि गांवोंकी शिक्षा-संस्थायें अैसी चीजें बनाने लगें जो दूसरोंको भी हों और शिक्षाकी दृष्टिसे कीमती भी हों तो ही यह हो सकता है। यह हो सके जिसके लिअे देशकी आर्थिक व्यवस्थामें भी साथ ही साथ क्रान्ति करनी पड़ेगी। अर्थ-व्यवस्था और शिक्षाके क्षेत्रमें अैसी दोनों क्रान्तिके फलस्वरूप साधारण और बुद्धिहीन कही जानेवाली मजदूरी और कुशल कारीगरी दोनोंकी दरोंमें सब तरहसे और ज्यादा समता होनी चाहिये; अन्न-वस्त्र, मकान और जीवनकी दूसरी जरूरी चीजोंकी पैदावारमें भी काफी वृद्धि होनी चाहिये। जिसके लिअे 'नयी तालीम' के

औद्योगिक संशोधनका अुद्देश्य छोटे पैमानेके और अलग-अलग बिखरे हुअे अुत्पादक धंधोंको आर्थिक दृष्टिसे सफल बनाना होना चाहिये। 'नअी तालीम' को ग्रामवासियोंके श्रममें वृद्धि किये बिना गांवोंका आर्थिक स्तर अूंचा अुठाना चाहिये। अुत्पादनका मुख्य अुद्देश्य व्यापार और अुद्योगसे नफा और व्याज कमाना नहीं, परन्तु देशकी आंतरिक स्वयंपूर्णता और अुसके सबसे ज्यादा पिछड़े हुअे वर्गोंके लिअे सुखके साधन मुहैया करना होना चाहिये।"

दोहरी क्रान्तिकी आवश्यकता

सत्याग्रह आश्रम स्थापित हुआ तबसे गांधीजी अिस बातका आग्रह करते आये हैं कि शालामें पढ़नेवाले विद्यार्थी कोअी न कोअी अुपयोगी वस्तुअें निर्माण करें। बुनियादी शिक्षाके आरंभमें भी अुन्होंने हमसे कहा था कि विद्यार्थियोंके कामसे शिक्षकोंका वेतन निकलना चाहिये। अिस मुद्दे पर अुन्होंने 'हरिजन' पत्रोंमें भी कअी बार लिखा है। बुनियादी शिक्षाकी योजना तैयार करनेके लिअे जब जाकिरहुसेन कमेटी बैठी थी, अुस समय हमने गांधीजीका यह मुद्दा अंशतः स्वीकार किया था।

अब गांधीजी कहते हैं कि सारी शिक्षा पूरी तरह स्वावलंबी होनी चाहिये। गोसेवा-संघमें तालीम पानेके लिअे आया हुआ कार्यकर्ता स्वाश्रयी बनकर किस तरह तालीम पा सकता है, यह प्रश्न अुठने पर अुन्होंने अपना यह स्पष्ट मत दिया कि अनिवार्य रूपमें स्वाश्रयका ही सिद्धान्त स्वीकार किया जाना चाहिये। स्वावलंबनसे कॉलिजका अध्ययन-क्रम पूरा करनेवाले लोग हमारे यहां हैं। ये लोग अधिकतर ट्यूशन आदिकी सहायतासे अैसा करते हैं। परन्तु ट्यूशन सबको कहांसे मिले? वह तो बम्बअी जैसी जगहोंमें ही मिल सकती है। परन्तु अमरीकामें हमारे यहांके विद्यार्थियोंने बेशक अिस ढंगसे शिक्षा प्राप्त की है।

रूसमें वहांकी सरकार अिसके लिअे जबरदस्त कोशिश करती है कि कोअी भी प्रजाजन अपढ़ न रहे। परन्तु वहांका तरीका दूसरा ही है। हमारे यहां मजदूरी करनेवालेके लिअे प्रगतिकी कोअी दिशा ही नहीं होती। अेक बार मनुष्य रसोअिया बना कि सदाके लिअे रसोअिया ही

रहता है। अुसके जीवनमें प्रगतिके लिअे स्थान ही नहीं होता। मनुष्य जो काम करता हो वह भी प्रगतिशील होना चाहिये। अमरीकामें अैसा नहीं है। कार्नेगी, फोर्ड और अेडिसन जैसोंके अुदाहरण जानने लायक हैं। वे मेहनत-मजदूरी करके आगे बढ़े और समाजमें प्रमुख स्थान पर पहुंचे।

यह मार्ग हमारे यहां खुला नहीं है, जिसके लिअे हम ब्रिटिश सरकार-को दोष नहीं दे सकते। यदि हम चाहते हों कि हमारे यहां भी अैसा हो, तो अिसके लिअे अनुकूल वातावरण पैदा करना चाहिये। अमरीकामें यह कैसे संभव हुआ है? अिसलिअे कि वहां मजदूरीका स्तर अूंचा है। मजदूरीका स्तर अूंचा हो अिसके लिअे आर्थिक स्थितिमें क्रान्ति करनेकी जरूरत है। मजदूरीका स्तर अूंचा अुठायेंगे तो ही मजदूरी करनेवालोंके जीवनमें अुत्साह आ सकता है। दस-ग्यारह घंटे कड़ी मेहनत करनेके बाद वह रात्रिशालामें कैसे आ सकता है? अिसलिअे मजदूरी देकर पढ़ाया जा सके, अैसी स्थिति अुत्पन्न करनी चाहिये। यह हाथके अुद्योगकी शिक्षा द्वारा ही संभव हो सकता है। अन्न-वस्त्र आदिकी कमी नहीं होनी चाहिये। हवा और पानीकी तरह ये चीजें पूरी मात्रामें मिल सकनी चाहियें। अन्न और वस्त्र पूरी मात्रामें मिलनेके लिअे कोअी हमें अमरीका और रूसकी अुत्पादन-पद्धति बताये तो वह हमारे कामकी नहीं। क्योंकि बेकार आदमी अुसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं? अिसलिअे छोटे पैमाने पर और अलग-अलग बिखरे हुअे केन्द्रोंमें अुत्पादन करनेकी पद्धति हमें स्वीकार करनी चाहिये। अिस काममें हमें विज्ञानका अुपयोग करना पड़ेगा। यह देखना होगा कि ये धंधे आर्थिक दृष्टिसे कैसे सफल बनाये जा सकेंगे। यह मैं कोअी अैतिहासिक बात आपसे नहीं कह रहा हूं। यह सच है कि अिस प्रकारके औद्योगिक 'टेकनिकल' संशोधनकी जिम्मेदारी तालीमी संघके सिर पर आती है। संभव है कि यह सब करनेके बाद भी हमारी स्थितिमें सुधार न हो। अिसलिअे अेक और वस्तुका विचार करना होगा। यह सब करनेका मकसद क्या है? नफा, ब्याज आदि कमाना? नहीं। अिन्सानको [illegible] [illegible] हरान है। यही बात हमें करनी होगी। सोनेवाले [illegible], [illegible] जमींदार अथवा साहूकार जैसी कमाअी करते हैं, वैसी नहीं तो करनी चाहिये। रुपया लेनेवाला आदमी यह कह सकता है कि [illegible], मैं

तुम्हारा मुद्दलका मुद्दल चुकाअूंगा ; वल्कि पांच सौके चार सौ निन्यानवे दूंगा, क्योंकि मैं तुम्हारी पूंजीकी रक्षा करूंगा !

ये सब धंधे नफेके लिअे नहीं चलने चाहिये। हमें देशके चालीस करोड़ लोगोंकी आवश्यकतायें पूरी करनी हैं। देशको स्वयंपूर्ण बनानेका प्रयत्न करना है। जीवनके साधनोंका अभाव किसीको कहीं भी बाधक नहीं होना चाहिये। आज तो किसानोंमें जीनेका भी अुत्साह नहीं रहा। मोक्षका हमारा तत्त्वज्ञान थोड़ेसे लोगोंके लिअे भले ही बना हो, परन्तु वह करोड़ोंका ध्येय नहीं हो सकता। किसलिअे जियें, यही प्रश्न है। बिनमांगा जन्म मिलनेके बाद मृत्यु भी वैसी ही मिलती है। जीवनके हेतुका सर्वथा अभाव दिखाअी देता है। लोगोंका किसी काममें अुत्साह नहीं रहा। अुन्हें यह डर रहता है कि यदि ज्यादा मेहनत करेंगे तो सेठ, साहूकार या सरकार छीन लेगी। अैसी प्रजाको जीवनका ध्येय मिलना चाहिये — अुसे अुसका भान कराना चाहिये। अुसे यह भी सिखाना होगा कि पराधीनताका नाश करना है। अज्ञानकी दशामें से ज्ञान, दरिद्रतामें से समृद्धि, रोगमें से आरोग्य और विषमतामें से समानता — अेकताकी तरफ अुसे प्रगति करनी है। नौकर मालिकका काम भले ही करे, परन्तु अिस कारणसे अुसका स्थान मालिककी बराबरीमें क्यों न हो? वह भी मालिकका अेक प्रकारका मंत्री या सेक्रेटरी ही तो है? मालिकके लिअे पत्रादि लिखनेवाला अुसका सेक्रेटरी कहलाता है, तो मालिकके लिअे रसोअी बनानेवाला भी सेक्रेटरी क्यों नहीं माना जाना चाहिये? यह सच है कि मैंने यह वस्तु सिद्ध नहीं की है, परन्तु मुझे अिसका भान हुआ है कि यह दोष है। हममें यह भावना जाग्रत होनी चाहिये कि मैले कपड़ेवाला प्रतिष्ठाका पात्र है।

कामके कारण मनुष्यको प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये, न कि स्वच्छ अुजले कपड़ोंके कारण या आरामसे बैठे रहनेके कारण।

'शिक्षण अने साहित्य', फरवरी १९४५

११

'नअी तालीम' का संदेश

पिछले कुछ वर्षोंसे गांधीजी अपने पहलेके प्रिय विषय चरखेके बनिस्वत 'नअी तालीम' के बारेमें अधिक बोलते थे। अिसका कारण यह नहीं था कि अुनकी दृष्टिमें चरखा पहलेसे कम महत्त्वका हो गया था। अुलटे, हाथ-कताअी और हाथ-बुनाअीके बिना अुनकी कल्पनाकी 'नअी तालीम' का अमल करना ही असंभव है।

नअी तालीम और चरखेके बीचके संबंधकी गांधीजीकी कल्पना सत्य और अहिंसाके बीचके संबंधसे लगभग मिलती-जुलती है। गांधीजीकी रायमें सत्य ही अीश्वर और ध्येय है; और अहिंसा अुसे प्राप्त करनेका साधन — अेकमात्र सच्चा और सबल साधन है। अिसी प्रकार नअी तालीम ध्येय है और चरखा अुसे प्राप्त करनेका साधन है। और जिस प्रकार अहिंसा शब्दसे केवल अहिंसा ही न समझकर अुसमें संयम, अपरिग्रह आदि दूसरे यमोंका समावेश करना होता है, अुसी प्रकार चरखेमें भी विश्वशांतिकी पक्की बुनियाद डालनेके लिअे आवश्यक औद्योगिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि सारी मानव-प्रवृत्तियोंका समावेश कर लेना है।

नअी तालीमको जिस तरह मैं समझता हूं, अुसके अनुसार यह शब्द किसी बुनियादी अुद्योग अथवा जिसे 'अुत्पादक प्रवृत्ति' कहा जाता है अुसके द्वारा दी जानेवाली शिक्षाका पर्यायरूप ही नहीं है। अुसी तरह, जैसा कअी बार कहा जाता है, अिसका अितना ही भावार्थ नहीं है कि बुनियादी अुद्योगके साथ पाठ्यक्रमके सब विषयोंका संबंध जोड़ दिया जाय अथवा आयोजन कर दिया जाय। शिक्षाकी अेक नअी तथा अलग पद्धति कहने मात्रसे जो कुछ सूचित होता है, अुससे कहीं अधिक अर्थ अिसमें छिपा हुआ है।

विचार करने लायक प्रश्न तो यह है कि हमें आजकल कौनसा ध्येय सिद्ध करनेके लिअे तालीम दी जाती है? हम सभी किस-

संबंधी सारी प्रवृत्तियोंसे — फिर भले ही वे प्राथमिक, माध्यमिक, अुच्च अथवा निष्णातोंकी शिक्षाकी हों — किस प्रकारका समाज पैदा कर रहे हैं या करना चाहते हैं? आधुनिक शिक्षाकी सारी सीढ़ियां पार कराकर अेक महत्त्वाकांक्षी, बुद्धिशाली युवक (अथवा युवती) को हम किस प्रकारके जीवनके लिअे तैयार करना चाहते हैं? विद्यार्थीको युद्धकी तत्परताके साथ मेल खानेवाले जीवनके लिअे तैयार करना चाहते हैं या शांति-स्थापनके साथ मेल खानेवाले जीवनके लिअे? आज अुसे अनिवार्य फौजी शिक्षा पानेके लिअे और फौजी नौकरी, मुल्की नौकरी, बड़ी मात्रामें अुत्पादन, विराट अुद्योग, पूर्ण शस्त्र-सज्जता, राजनीतिक दलोंका संगठन आदि 'केरियरों' के लिअे तैयार किया जाता है। वह अेक समर्थ राजनीतिज्ञ, अेक सफल पत्रकार, अेक प्रभावकारी प्रचारक अित्यादि बनना चाहता है। अुसे अैसा जीवन जीनेकी तालीम दी जाती है, जिसमें अुसे सतत विमानोंमें घूमनेको मिले तथा जो अद्यतन विपुल साधन-सम्पत्तिवाला हो। अुसका बस चले तो वह देहातमें व्यतीत करनेका, जन्मसे लेकर मृत्यु तक खेतोंमें पशुओंके साथ रहनेका अथवा हाथ-करघे पर बुनाअीके काममें लगे रहनेका तथा गांवोंके प्रश्नों पर ध्यान देकर गांवोंका जीवन-स्तर अूंचा अुठानेके काममें व्यतीत करनेका जीवन पसंद नहीं करेगा। आज हम अपनी प्रजाको जिस प्रकारकी शिक्षा देते हैं, वह अेक बुद्धिशाली और महत्त्वाकांक्षी युवक अथवा युवतीको अिस प्रकारके जीवनसे संतुष्ट रहनेवाला हरगिज नहीं बनाती। फिर भले ही अिस जीवनके साथ यह आश्वासन दिया जाय कि वह काम करेगा तो अुसे अेक अच्छा-सा घर, पेटभर पौष्टिक भोजन, पर्याप्त वस्त्र, अच्छी संगति और निर्दोष आनन्द लेने लायक संस्कारी प्रवृत्तियां मिल जायंगी। अिससे अुसे सन्तोष नहीं होगा, क्योंकि अुसे बचपनसे अेक और चीजको अिससे अधिक चाहनेकी तालीम मिली है; अर्थात् हमेशा आगे आनेकी और चकाचौंध पैदा करनेवाली परिस्थितिमें रहनेकी। अुसे धांधली चाहिये, शांति नहीं, फिर भले वह धांधली आग बरसानेवाले बॉम्बर हवाअी जहाजकी और मानव-जातिके सर्वनाशकी ही क्यों न हो। किसी प्राणीके जीवनके लिअे, सादगीके लिअे और सदाचरणके लिअे अुसके मनमें आदर नहीं रहा। स्वतंत्रताका भी बलिदान कर दिया

जाता है। मौजूदा शिक्षा-प्रणालीका — पुरानी तालीमका — केन्द्रबिन्दु भौतिक शास्त्रों द्वारा सामर्थ्य बढ़ाते जाना है।

नअी तालीमका संदेश अिससे अुलटा है। वह भलाअीका विकास करना चाहती है, सामर्थ्यका नहीं; अपने विद्यार्थियोंमें — फिर ये बालक हों या बड़े — वह लड़ाअी और झगड़ेके बजाय शांति और सुमेलका, सादे आनंदोंका, सादी सुख-सुविधाओंका, सचाअीका तथा नीतिमत्ताका प्रेम, काम करनेका आनंद और स्वतंत्रताका जोश पैदा करना चाहती है। वह जीवित प्राणियोंको अेक बड़े यंत्रके पुर्जोंकी तरह नहीं मानना चाहती, ताकि वे अुसके साथ मेल खायं तो ही किसी महत्त्वके रहें, अन्यथा जरा-सी भी आनाकानीके बिना 'खतम' कर देने योग्य माने जायं।

चरखा अिस प्रकारकी संस्कृतिके विकासके लिअे सबसे अधिक महत्त्वके स्थूल साधनोंमें से अेक है। वह केवल पुराने जमानेका सूत पैदा करनेवाला यंत्र नहीं है। वह तो अेक अैसा केन्द्र है, जिसके चारों ओर शांतिकी संस्कृति खड़ी की जा सकती है। अिसलिअे अुसे शिक्षाकी सारी मंजिलोंमें केन्द्रीय स्थान दिया जाना चाहिये। बचपनसे ही चरखा बालकके जीवनका अेक अंग न बने और अुसके जीवनके अन्त तक वैसा न रहे, तो खादी स्वयं ही जड़ नहीं जमा सकती। चरखा गांधीजीके सारे रचनात्मक कार्यक्रमका प्रतीक है। अिसका जब हम विचार करते हैं, तो अुन्होंने 'लोकसेवक-संघ' नामक अपनी अन्तिम टिप्पणीमें (देखिये हरिजन, १५–२–'४८) जो यह जोर दिया है कि लोकसेवकोंको "ग्रामीण लोगोंकी जन्मसे लगाकर मृत्यु तककी शिक्षाकी व्यवस्था 'नअी तालीम' के मार्ग पर, हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी निश्चित की हुअी नीतिके अनुसार करनी चाहिये", अुसमें कोअी आश्चर्य नहीं होगा।

'शिक्षण अने साहित्य', मार्च १९४८

१२

अितिहासका ज्ञान

पिछले पचास वर्षोंसे विद्वानोंने अितिहासके ज्ञानकी बड़ी महिमा गाअी है, और अनेक दिशाओंमें अैतिहासिक शोध करने तथा अनेक विषयोंका अितिहास लिखनेकी काफी कोशिश हुअी है। अपने देश, जगत तथा जीवनकी अनेक बातोंका पिछला अितिहास जानना मनुष्यकी सर्वांगीण और सामान्य तालीमका आवश्यक अंग माना गया है। अर्थशास्त्रियोंमें अितिहासवादियोंका अेक सम्प्रदाय ही है। कम्युनिस्ट अपनी विचारसरणीको अैतिहासिक सत्यों पर ही आधारित मानते हैं और अुस परसे मानव-जीवनके भविष्यके सम्बन्धमें निश्चित मत प्रतिपादित करते हैं। अैतिहासिक ज्ञानकी महिमामें से अितिहासको 'सुरक्षित रखनेका' भी अेक आग्रह पैदा हुआ है और वह अिस हद तक बढ़ा है कि मानवके आदि-युगके नमूने लुप्त न हो जायं, अिसलिअे कुछ पुरातत्त्ववादियोंका विचार है कि जंगली व पिछड़ी हुअी जातियोंको अुनकी आदि-दशामें ही रहने दिया जाय। अैसे लोग भी हैं, जो अनेक रूढ़ियों तथा संस्थाओंको आजके जीवनमें अर्थहीन और असुविधाजनक होते हुअे भी अितिहासको सुरक्षित रखनेके लिअे बनाये रखना चाहते हैं।

जब अितिहासका अितना ज्यादा महत्त्व माना जाता हो, तब मेरे यह कहनेमें धृष्टता मालूम होगी कि यह मान्यता लगभग वहमकी कोटिकी है। मगर बड़ी नम्रतासे मैं कहना चाहता हूं कि अितिहासके ज्ञानका जितना महत्त्व माना जाता है, अुतने महत्त्वका पात्र वह नहीं है। अिसमें पीतलके गहनेको सोनेका गहना मान लेने जैसी ही भूल की जाती है।

सच बात तो यह है कि किसी भी घटनाका सोलह आने सच्चा अितिहास हमें भाग्यसे ही मिलता है। खुद ही की हुअी और कही हुअी बातोंकी भी याददाश्त अितनी तेजीसे धुंधली पड़ जाती है कि थोड़े समय बाद अुसमें सत्य और कल्पनाका मिश्रण हो जाता है। किसी मानस-

शास्त्रीने अेक प्रयोगका वर्णन किया है। विद्वानोंकी सभामें अेक नाट्य-प्रयोग किया गया। अुसमें अेक दुर्घटनाका प्रदर्शन किया गया। प्रयोगके साथ ही अुसकी फिल्म भी अुतार ली गअी। प्रयोग कुछ मिनटोंका ही था। प्रयोग होनेके आठ घण्टेके बाद श्रोताओंसे कहा गया कि अुन्होंने जो देखा अुसका ठीक ठीक वर्णन लिखें। नतीजा यह आया कि तीस साक्षियोंमें से अेक दोके वर्णन तो फिल्मके साथ ८० फीसदी मिलते थे, शेष सबके वर्णनोंमें ४० फीसदीसे ६० फीसदी तककी भूलें निकलीं।

अिसमें आश्चर्य करने जैसी कोअी बात नहीं है। जब तटस्थ और सावधान साक्षी भी घटनाओंको यों तेजीसे भूल जाते हैं, तब फिर जिनमें घटनाओंको जन्म देनेवाले तथा अुन्हें लिख रखनेवाले लोगोंका कोअी रागद्वेष — पक्षपात वगैरा हो, अुनके वर्णनोंमें अगर सचाअीका हिस्सा कम हो और जैसे जैसे समय बीतता जाय, वैसे वैसे ज्यादा कम होता जाय, तो अिसमें आश्चर्यकी क्या बात है? वर्तमान घटनायें भी अेक ही दिनमें अैसी संशयास्पद बन सकती हैं कि सच सच घटना क्या घटी यह कभी भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कल तक कलकत्तेकी 'काल कोठरी' की बातको सभी विद्यार्थी और शिक्षक सच्ची घटना समझते थे। वही अब गप साबित हुअी है। अभी हाल ही में पंडित सुन्दरलालजीने यह बतलाकर हमें आश्चर्यचकित कर दिया है कि सोमनाथको लूटनेकी बात भी सच नहीं है। अगस्त १९४६ के बाद देशभरमें होनेवाले हिन्दू-मुस्लिम अत्याचारों और दंगोंका सोलह आने सच्चा अितिहास कभी भी नहीं मिल सकेगा। कृष्णका सच्चा जीवन-चरित्र कौन जान सकता है? रामका ही नहीं अीसा मसीहका भी जन्म कभी हुआ था या नहीं, और अुन्हें फाँसी पर चढ़ाया गया था या नहीं, अिस पर भी शंका की गअी है। शेक्सपीयरके नाटकोंके सम्बन्धमें प्रेमानन्दके नाटकों जैसा ही विवाद है। अिधर विद्वानोंमें अिस संबंधमें चर्चा चली है कि [illegible] कितने हो गये हैं।

जिस तरह जिस अितिहासके ज्ञानकी हम महिमा गाते हैं, [illegible] अितिहासके नामसे और सेक्रेटेरियेटके दफ्तरों तथा प्रत्यक्ष ज्ञान [illegible] मुँहसे सुनकर लिखा गया हो, फिर भी वह [illegible]

ज्यादा कीमती नहीं होता। अुसका वाचन और पिछली कड़ियोंको खोजने और जोड़नेकी बौद्धिक कसरत मनोरंजक अवश्य है, मगर शेक्सपीयर, कालिदास और बर्नार्ड शॉके अुत्तम नाटकों या पौराणिक वार्ताओं तथा परंपरागत दंतकथाओंसे ज्यादा कीमत न तो अिसकी करनी चाहिये, और न अुनसे ज्यादा अिसके ज्ञानका मोह रखना चाहिये।

अितिहास पढ़कर भूतकालके सम्बन्धमें हम जो कल्पनायें करते हैं, वे योग्य मात्रासे बहुत ज्यादा व्यापक रूप लिये होती हैं। और अुन परसे हम जो अभिमान या द्वेष अपने दिलोंमें पालते हैं, वे तो बेहद अनुचित होते हैं। प्रजाजीवनके वर्णनोंमें प्रजाके बहुत ही थोड़े भागके जीवनकी जानकारी अुसमें दी हुअी रहती है; मगर हम समझ लेते हैं कि वह पूरी प्रजाकी हालतका वर्णन है। भूतकालमें भी समृद्धि थी। बड़े बड़े नगर थे, नालंदा जैसे विद्यापीठ थे; अिस जमानेमें भी हैं। मगर हमें अैसा नहीं लगता कि आजकी तरह अुस समय भी थोड़े ही लोग अुस समृद्धिका अुपभोग करते होंगे, ज्यादातर लोग गरीब ही होंगे; गुरुकुलोंका लाभ गिनेचुने लोग ही लेते होंगे; गार्गी जैसी विदुषी कोअी हर ब्राह्मणके घरमें नहीं होगी; अनेक ब्राह्मणियां तो आज जैसी ही निरक्षर होंगी, और दूसरे वर्णोंके स्त्री-पुरुष भी आज जैसे ही होंगे। मगर हम समझते हैं कि अुस समय तो सभीकी हालत अच्छी ही थी; बादमें बदल गअी। लेकिन बहुत बड़े प्रजा-समूहके लिअे अैसा कहां तक कहा जा सकता है, अिसमें शंका ही है।

शिवाजीने अुस जमानेके मुसलमान राज्योंके खिलाफ मोर्चा लिया और स्वतंत्र हिन्दू राज्यकी स्थापना की, अिस परसे मराठा मात्रको लगता है कि मुसलमानोंसे द्वेष करना अुनका कुलधर्म है; अिसी न्यायसे शिवाजीने सूरतको लूटा था, अिसे पढ़कर मेरे अेक बचपनके साथीको, जिसके पूर्वज सूरतमें रहते थे, अैसा लगता था कि शिवाजी और मराठे सब लुटेरे ही थे और महाराष्ट्रीयोंके प्रति घृणा रखनेमें अुसे कुलाभिमान मालूम होता था। अगर अितिहास जैसी कोअी चीज न हो, मनुष्यको भूतकालकी कोअी स्मृति ही न रहती हो, तो देश-देश और प्रजा-प्रजाके बीचकी दुश्मनियोंको पोषण न मिले। अभी तक अैसी कोअी प्रजा या

व्यक्ति नहीं हुअे, जिन्होंने अितिहास पढ़कर कोअी शिक्षा ली हो और समझदार बने हों।

सच पूछा जाय तो अितिहास स्मृति या याददाश्तका ही दूसरा नाम है। क्योंकि ज्यादातर अितिहास लिखनेकी प्रवृत्ति अुस समय नहीं होती जब कि स्मृति ताजी होती है, बल्कि अुस समय होती है जब वह धुंधली पड़ जाती है और सच्ची घटनायें जाननेके साधन भी लुप्त होने लगते हैं। मगर ताजी और सच्ची स्मृति भी मनुष्यको मिला हुआ वरदान ही नहीं, बल्कि शाप भी है। दो गायोंके बीच सहानुभूति —प्रेम सदा रहता है। अुनके बीच हुआ झगड़ा क्षणिक होता है, क्योंकि अुनकी याददाश्त बहुत कमजोर होती है। और जब झगड़ा न हो, अुसकी याद भी न हो, तब अुनकी आपसकी सहानुभूति स्वभावसिद्ध होती है। मगर मनुष्य स्मृतिको ताजी रखकर ज्यादातर द्वेषको ही जीवित रखते हैं; यानी सहानुभूतिको—प्रेमको घटाते हैं। स्वभावसिद्ध सहानुभूति—प्रेम अगर किसी खास कर्म द्वारा व्यक्त किया गया हो, तो वह याद रहता और पुष्ट होता है; मगर अुसके अभावमें या अुसे भुला सकनेवाला झगड़ा कहीं अेक बार भी हो जाय, तो वह स्मृति ज्यादा लम्बे अरसे तक टिकता है।

यह सब देखते हुअे मुझे नहीं लगता कि अितिहासका शिक्षण काव्य-नाटक-पुराण-अुपन्यास वगैरा साहित्यके शिक्षणसे ज्यादा महत्व रखता है। अितिहासका अज्ञान अेकाध प्रसिद्ध नाटक या काव्यके अज्ञानसे ज्यादा बड़ी खामी नहीं है। अिसे मनोरंजक साहित्यका ही अेक विभाग समझना चाहिये।

आजका मानव-जीवन अितिहासका ही परिणाम है। हमें आजके मानव-जीवनका अच्छी तरहसे निरीक्षण करना चाहिये और अितिहासकी कैदमें पड़े बगैर अुसकी समस्याओंका हल खोजना चाहिये। अैसा डर रखनेका कोअी कारण नहीं है कि अितिहास छूट जायगा या अुसकी परम्परा कायम नहीं रहेगी। क्योंकि अुसके संस्कार तो पहलेसे ही हमारे जीवनमें दृढ़ हो चुके हैं। अिसलिअे चाहे जितना प्रयत्न कीजिये, अुसकी कारण-कार्य-शृंखला टूट ही नहीं सकती। जो अुपाय हम खोजेंगे, वे भी

भूतकालके किसी संस्कारमें से ही सूझेंगे, यानी बिना पढ़े हुअे अितिहासमें से ही सूझेंगे। पढ़े हुअे अितिहासका अुलटे अिसमें विघ्नरूप होना ही ज्यादा संभव रहता है।

अगर अितिहास न होता, तो झंडेके चक्रकी अशोकके धर्मचक्रसे या कृष्णके सुदर्शन चक्रसे तुलना करनेकी अिच्छा न होती; और चांद-तारेके झंडेको भी महत्त्व न मिलता। अितिहासका ज्ञान क्षीण होनेके कारण जिस तरह मध्यकालमें हिन्दुस्तानमें आये हुअे शक, हूण, यवन, बर्बर, असुर वगैरा लोगों तथा अुनके धर्मों और आर्योंके बीच आज कोअी स्वदेशी-परदेशीका भेद नहीं करता या हिन्दूकी 'सावरकरी' व्याख्या पढ़ने नहीं बैठता, अुसी तरह आज मुसलमान, अीसाअी, पारसी वगैराके संबंधमें भी हुआ होता। पौराणिक चतुःसीमाके अनुसार अरबस्तान, तुर्कस्तान, मिस्र, बरमा वगैरा सब देश भरतखंडके ही देश माने जाते। जिस तरह अितिहासके अज्ञानके कारण कुछ लोग मानते हैं कि सारे पुराण अेक ही कालमें और अेक ही व्यक्ति द्वारा लिखे गये हैं, अुसी तरह सारे धर्म सनातन धर्मके ही भेद समझे जाते। अितिहास पढ़नेके परिणाम-स्वरूप हम दूसरोंसे अलग होना सीखे हैं, मिलना नहीं।

शिक्षणमें अितिहासको गौण स्थान देनेकी जरूरत है। अुसकी कीमत भूतकाल-सम्बन्धी कल्पनाओं अथवा दन्तकथाओंके बराबर ही समझनी चाहिये।

'जड़मूलसे क्रान्ति', ३०-१-'४८

